मधुनीर

डॉ. माधवप्रसाद पाण्डेय

H
818
P 192 M

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

H
818
P 192 M

मधुनीर

⊙

डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय

⊙

शक १९२० : सन् १९९८ ई०
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

H
818
P192M

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 97780
Date 11/7/2000

प्रकाशन वर्ष : १९८५ ई०
द्वितीय संस्करण : ५००
मुद्रक : सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग
मूल्य : बीस रुपया मात्र
प्रकाशक : प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

Library IIAS, Shimla
H 818 P 192 M
00097780

प्रकाशकीय

• • •

मानव-मन के अमूर्त्तभाव छन्दोबद्ध होकर 'गीत' की सृष्टि करते हैं। वे ही जब छन्द की परिधि से छूटते हैं तब अतुकान्त कविता जन्म लेती है और जब गद्य में विस्तार पाते हैं तब पुनः 'गद्य-गीत' विधा के स्तबक बनकर मन को रिझाते हैं। भाव-बोध के स्तर पर रागानुराग से सिक्त मन, प्रकृति और उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानव के सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप की ओर आकृष्ट होता रहा है। कवि-हृदय रचनाकार पूर्ण प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए ही गद्यगीत विधा में अपने रचनाकौशल और शब्द-सामर्थ्य से पाठकों को उद्‌बुद्ध करता है। गद्य-लेखन रचनाकार की पूर्णता का द्योतक माना गया है क्योंकि वह कवि की सामर्थ्य का निकष है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'।

जहाँ हिन्दी की अन्य विधाओं का विकास हुआ है, वहीं 'गद्य-गीत' विधा में रमनेवाले रचनाकारों की कमी खलती है। यह सौभाग्य का विषय है कि डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय ने इस विधा में कुछ प्रयोग किये हैं। उनके गद्य-गीतों के दो संग्रह 'मधुगीत' (सन् १९६४ ई० में) और 'छितवन के फूल' (सन् १९७४ ई० में) प्रकाशित हो चुके हैं। इस विधा की ओर ध्यान आकृष्ट करने की दृष्टि से उनके ललित-मधुर गद्य-गीत-गुच्छ' 'मधुनीर' को सम्मेलन-पत्रिका' में प्रकाशित करने की योजना के अन्तर्गत पुस्तकाकार रूप में भी प्रकाशित किया जा रहा है।

विश्वास है, विज्ञ एवं रसज्ञ पाठकों को ये गद्य-गीत तरल और सहज रागात्मक अनुभूतियों से रसाप्लावित करेंगे।

डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
साहित्य मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

विजयादशमी
संवत् २०४२

ब्रह्मानन्द को

• • •

अनुक्रम

• • •

प्राक्कथन • डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

निवेदन • डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय

झरितदान मधुनीर • डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय

• • •

साथी !	१	मेरे सर्वस्व	१८
रूप ! हुलास भरे	२	प्रिय ! जब तुम	१९
रूप ! निदाघ	३	सुन्दर !	२०
रूप ! जब तुम	४	प्रियतम ! दूरी	२१
प्राणप्रिय !	५	प्रिय ! तनहाई	२२
प्रिय ! मासूम चितवन	६	प्रियवर ! वेला	२३
स्नेहमय ! प्रथम दर्शन	७	असाढ़ के मेघ	२४
प्रिय ! जब	८	हृदयेश !	२५
वीणापाणि !	९	निर्मम !	२६
वसंतदूतिके !	१०	यह काली रात	२७
रागी मेरे !	११	मध्यनिशा	२८
प्रियवर ! दूरी	१२	तुलसी !	२९
प्रिय ! जब तुम	१३	यह सूनी उदास	३०
स्नेहमय ! प्रेम-पुष्पों का	१४	स्नेहमय ! कैसे	३१
प्रिय ! तुम	१५	वर्षान्त के	३२
प्रिय ! मैं	१६	प्रियवर ! आसक्ति	३३
प्रिय ! तुम्हें	१७	प्रिय ! मेरे	३४

प्रिय ! यह ३५
स्नेहमय ! तुम्हारे ३६
स्नेहमय ! तुम्हारे प्यार ३७
नेह प्रतिमा ! ३८
प्रिय ! अनुराग ३९
मेरे अनुराग-संबल ! ४०
मेरे स्नेह-प्राण ! ४१
मेरे स्नेह-प्रतीक ! ४२
मेरे मयंक ! ४३
स्नेहमय ! तनहाई ४४
प्रिय ! चाँद की ४५
अनुरागी मेरे ! ४६
प्रिय ! जीवन ४७
प्रियवर ! सूना ४८
क्रूर-हृदय ! ४९
अनुरागमय ! ५०
स्नेहमय ! ५१
यह शरद-श्री ५२
प्रिय मेरे ! ५३
शिशिर की यह रात ५४
प्रियवर ! ५५
दोस्त ! यह जीवन ५६
प्रिय ! हिम सदृश ५७
प्रियवर ! अनुराग ५८
प्रिय ! तुम्हारी ५९
प्रियवर ! तुम्हारी ६०
प्रियवर ! दीपोत्सव ६१
प्रियतम ! वाट निहारते ६२
प्रियतम ! छितवन-सुमनों ६३
प्रिय ! दीर्घ ६४
प्रियवर ! ६५
प्रिय ! जाड़े की ६६
स्नेहमय ! अनुराग ६७
प्रिय ! शवनम ६८
प्रियतम मेरे ! ६९
प्रिय ! मेरे ७०
प्रियतम ! देखोन ७१
प्राणप्रिय ! ७२
प्रियवर ! तुम्हारा ७३
सयाने प्रिय ! ७४
प्रियतम ! किनारे ७५
प्रिय ! वसन्त ७६
प्रियतम ! यह वसन्त ७७
स्नेहमय ! तुम्हारे ७८
प्रिय ! फागुनी ७९
ऋतुराज ! ८०
मधुमास ! ८१
प्रिय ! वसन्त ८२
प्रिय ! मधुमास ८३
प्रियवर ! ८४
प्यारे ! विछोह ८५
प्रियतम ! तुम्हारे ८६
प्यारे ! लापरवाही ८७
प्रिय ! यह सूनी ८८
प्रिय ! तुम्हारी ८९
प्रियवर ! तनहाई के ९०
प्यारे ! वियोग ९१
प्रिय ! तुम्हारी उदासीनता ९२
प्यारे ! तुम्हारी ९३
प्रियवर ! मालती ९४
प्रिय मेरे ! ९५
प्रियतम ! जीवन ९६
प्रियतम ! वियोग ९७
प्रियवर ! आज ९८
प्रिय ! लगाव ९९
प्रिय ! स्मृतियों १००

प्राक्कथन

⊙ ⊙ ⊙

ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि दी है और हृदय दिया है। इन्हीं दोनों के आधार पर साहित्य की दो कोटियाँ निर्धारित की जाती हैं--१. बुद्धि से सम्बन्धित साहित्य ज्ञानवर्द्धक साहित्य कहा जाता है और २. हृदय से सम्बन्धित साहित्य ललित साहित्य। ललित साहित्य पद्यबद्ध हो या गद्य के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ हो उसकी एक ही विशेषता है--भावाभिव्यक्ति। इसलिए माध्यम कुछ भी हो भाव की प्रधानता उसे ललित साहित्य की संज्ञा प्रदान करती है। गद्य-गीत एक ऐसी ही विधा है जो गद्य का आश्रय लेती हुई भी रचयिता की संवेदनशीलता उजागर करती है। संस्कृत साहित्य-शास्त्र में कथा, वृत्त, आख्यायिका आदि की गणना गद्य-काव्य के अन्तर्गत की गई है। किन्तु आधुनिक काल में गद्य-काव्य का अर्थ सीमित हो गया है। अपने विशिष्ट अर्थ में गद्य-काव्य या गद्य-गीत वह विशिष्ट रचना है जिसमें कविता जैसी भावप्रवणता और रसात्मकता रहती है। उसमें लय और अलंकृत शैली की प्रधानता होती है। उसमें अपना शैली-वैशिष्ट्य रहता है। हिन्दी में राय कृष्णदास, वियोगी हरि, चतुरसेन शास्त्री, सुदर्शन, रघुबीर सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि ने गद्य-गीत-साहित्य को समृद्ध बनाया है। उसी परम्परा में 'मधुनीर' के रचयिता डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय का स्थान है। डॉ० पाण्डे साहित्य-मर्मज्ञ हैं और उनमें कारयित्री और भावयित्री दोनों प्रतिभाएँ हैं। 'मधुनीर' में संकलित उनके द्वारा रचित गद्य-गीतों में भाव-शबलत्व है और उनसे उनके हृदय की प्रकृति-सापेक्ष सरसता का परिचय प्राप्त होता है। मानव और प्रकृति के समन्वय से वे रसार्द्र हो उठे हैं। उनके गद्य-गीतों में सुकुमारता

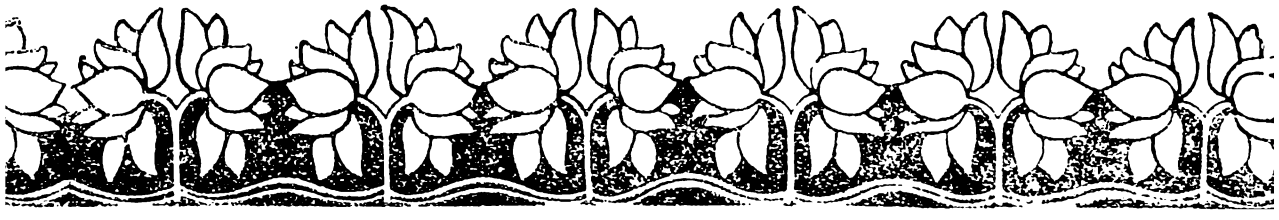

और साहित्यिक सौष्ठव है। भाषा भावानुगा है। मानव और प्रकृति के साहचर्य से उनका अन्दर का कवि जाग उठा है। डॉ० पाण्डेय के और भी गद्य-गीत प्रकाशित हो चुके हैं। किन्तु 'मधुनीर' में भाव और शिल्प दोनों दृष्टियों से प्रौढ़ता है। 'मधुनीर' हिन्दी के गद्य-गीतों की शृंखला की एक सुन्दर कड़ी है। आशा है उनकी इस रचना से गद्य-गीत-साहित्य समृद्ध होगा।

मैं उन्हें हार्दिक वधाई देता हूँ।

३-ए ताशकन्द मार्ग
इलाहाबाद

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

⊙

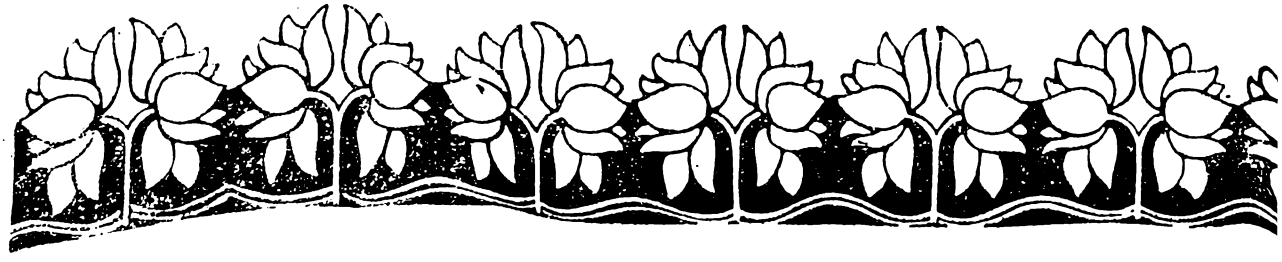

निवेदन

'मधुनीर' की प्रकाशन-वेला में मुझे स्व० माखनलाल चतुर्वेदी रचित 'साहित्य देवता' की उस नन्हीं भूमिका का तीसरा और अन्तिम वाक्य बरबस आकृष्ट कर रहा है--"कोई भाग्यशाली, इस भूमिका के आगे, प्रकृत वस्तु को लिखकर, मेरे इस अधूरे प्रयत्न को पूरा करेगा; इसी आशा से, मैं भारती के मन्दिर में, यह अधूरा अर्घ्य चढ़ाने का साहस कर रहा हूँ।" 'साहित्य देवता' गद्य-काव्य विधा की सशक्त रचना है। गद्यकाव्यकार माखनलाल चतुर्वेदी की उपर्युक्त पंक्ति वर्तमान गद्यगीत प्रणेताओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्‌बोधन है। अनेक गद्यगीतकार तब से निरन्तर भाव-सुमनों के हार तथा विभिन्न रसों के मिश्रण का अर्घ्य चढ़ाते चले आ रहे हैं, राय कृष्णदास की 'साधना' और 'प्रवाल', वियोगी हरि का 'अन्तर्नाद', आचार्य चतुरसेन प्रणीत 'अन्तस्तल', मोहनलाल महतो 'वियोगी' रचित 'वंदनवार', तेजनारायण काक कृत 'मदिरा', दिनेश नन्दिनी जी की 'शारदीया', 'शबनम' और 'दुपहरिया के फूल' आदि प्रतिनिधि एवं सशक्त रचनाएँ इस विधा की हिन्दी साहित्य को भेंट हैं। 'मधुगीत' और 'छितवन के फूल' के प्रकाशन के बाद 'मधुनीर' साहित्य-देवता को समर्पित मेरे गद्यगीतों का तीसरा निर्माल्य है। इसमें सन् '६९ से सन् ८२ तक के समय-समय पर लिखे गद्यगीत संगृहीत हैं। सन्' ६० से गद्यगीतों के प्रणयन का यह सिलसिला चल रहा है। बीच-बीच में लेखनी ने विश्राम भी किया है, किन्तु इनका प्रणयन कभी अवरुद्ध नहीं हुआ है। 'मधुनीर' के गीत यदि आपके भाव-जगत् को अभिषिक्त कर सके, तो मैं अपने को कृतकार्य समझूँगा। 'मधुनीर' का 'प्राक्कथन' मेरे पूज्य आचार्य डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है। 'मधुगीत' को भी 'दो

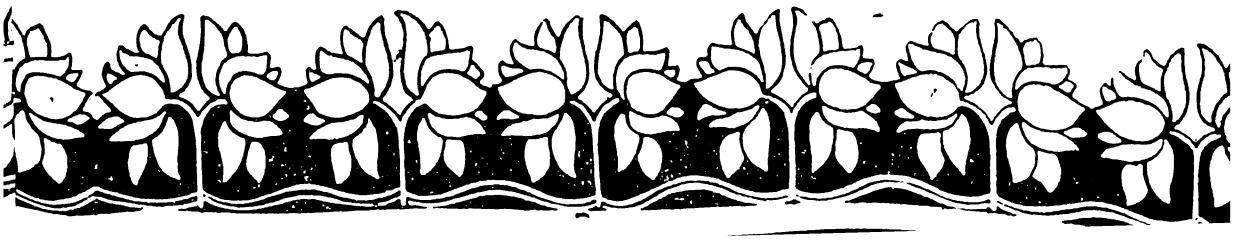

शब्द' के द्वारा उनका स्नेह प्राप्त हुआ था। डॉक्टर साहब का स्नेह एवं आशीर्वाद मेरी साहित्य-साधना का सम्बल है। मैं उनके आशीर्वाद का चिरकामी हूँ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री डॉ० प्रभात शास्त्री की असीम अनुकम्पा से ही यह रचना प्रकाश में आ रही है। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। सम्मेलन के संग्रह-मंत्री डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र के प्रयास ने ही 'मधुनीर' को चिरविराम से मुक्त किया। इसका प्रकाशन उनके सद्प्रयत्न से ही सम्भव हुआ है। श्री श्यामकृष्ण पाण्डेय, सहायक मंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'मधुनीर' को सम्मेलन का प्रकाशन बनाने की भूमिका निर्मित की। इसका सुन्दर कलेवर उनकी ही सुरुचि का परिणाम है। डॉ० मिश्र और श्री पाण्डेय मेरे अभिन्न हैं। उनके स्नेह एवं सहयोग को धन्यवाद या आभार प्रदर्शित कर हल्का नहीं करना चाहता। अन्त में मैं साहित्य-विभाग के अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय तथा साहित्य विभाग के सहायक श्री रमेशप्रसाद शुक्ल का भी आभारी हूँ, जिनके अथक परिश्रम और लगन के फलस्वरूप यह रचना प्रकाशित हो रही है।

तुलसी जयन्ती, सं० २०४२

२२-८-८५

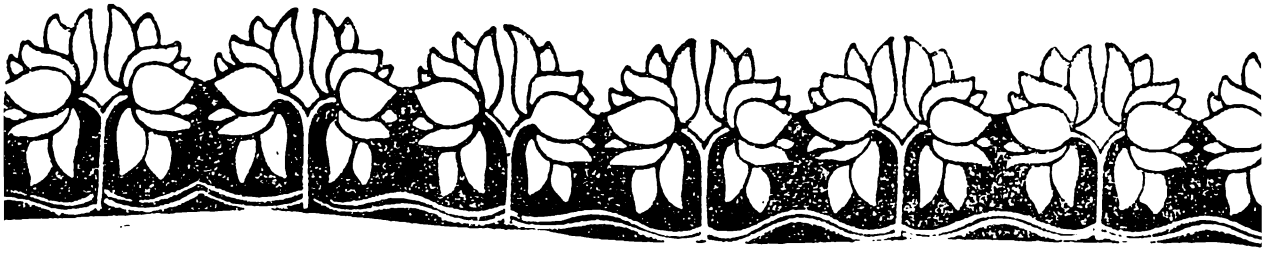

तब मैं किशोर था। इतनी पुरानी याद को एक धुँधली तस्वीर मन को अपनी ओर खींच रही है। तेजनारायण काक 'क्रांति' की गद्यकाव्य रचना 'मदिरा' मेरे हाथ लगी। उसे मैं पढ़ गया--पूरा या अधूरा, याद नहीं। पर मन तब भी झूमा था और आज भी उसकी स्मृति मधुनीर सदृश मेरे हृदय-देश की धरती पर टपक रही है। इसलिए उसकी कुछ पंक्तियों को ढूँढ़कर मैं उल्लसित हूँ। ऋतुराज के लिए कवि का विरही मन इतना बेचैन हुआ कि प्रकृति का सम्पूर्ण शृङ्गार ही उसे उदास-लगने लगा--**'पृथ्वी की वाटिका के वृक्ष तुम्हारे विरह में सूखकर काँटा हो रहे हैं, पहाड़ियों का शृङ्गार उजड़ गया है, कोकिल गीत गाना भूल गयी है और स्वयं पृथ्वी अनाथा वियोगिनी की भाँति बाल बिखराये धूल में लोट रही है।** (मदिरा, पृष्ठ ५०) इसी प्रकार प्रकृति के उपादानों में प्रेयसी के रूप का आभास भी कितना मनोमुग्धकारी है--**'प्रिये ! अब बादलों का झीना अवगुण्ठन हटाकर चाँद बाहर निकल आया तो मुझे ऐसा ज्ञात होने लगा मानो तुम्हारा घूँघट धीरे से सरक गया है और मेरी उत्सुक आँखों को तुम्हारी अनुपम रूप-राशि के चिर अभिलषित दर्शन प्राप्त हो गये हैं।** (मदिरा, पृष्ठ ६९)

तब मुझे क्या पता था कि 'मदिरा' का प्रेरक उल्लास मुझे गद्यकाव्य का ऐसा अनुरागी बना देगा कि मैं इसमें रम जाऊँगा। राय कृष्णदास के 'प्रवाल' और माखनलाल चतुर्वेदी के 'साहित्य देवता' ने मेरी इस आसक्ति को तब और विकसित किया था। पर मन कुछ खोया-खोया-सा रहता, जैसे स्मृति को विस्मृति ढँक ले। मधुवर्षी बादल हृदय-देश पर कई बार आते और बिखर जाते। कविता के अंकुर कई बार ममस कर सूखे। जीवन-उपवन के एक कोने से मधु की चाह लिए यौवन झाँक रहा था। तभी हृदय-देश की सूखी धरती फटी और तल की नमी ने कविता के अंकुरों को मानो जीवन दे दिया।

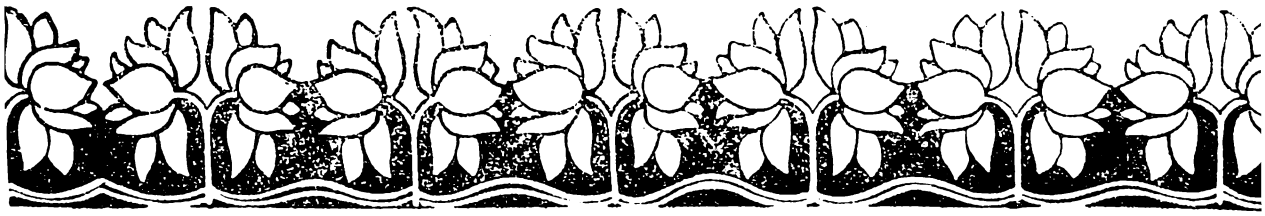

गतिशील जीवन किशोर-वन के पड़ाव से कुछ आगे बढ़कर यौवन के उद्यान में प्रविष्ट हुआ। तब थकान न थी, पर मन अलसाया-अलसाया सा रहता, एक अजीव-सी अँगड़ाई-टूटन और मस्ती भी। मेरे गीतकार की गुनगुनाहट में एक प्रश्न था--'**अभी यौवन के उद्यान में प्रवेश ही तो किया है। इसका पड़ाव भी है बिल्कुल बीचो-बीच ..... जो अभी दूर है। फिर यहीं रुकने की कामना क्यों जग रही है? यह कलियों का गाँव है ..... अभी फूलों का नगर दूर हे। यह तितलियों का केलि-स्थल ..... अभी भ्रमरों का गुञ्जन-वन दूर है। यहाँ बुलबुल गाती है ..... कोयल की कुहकन आगे सुन पड़ेगी। अभी रागमयी साँझ का बचपन है, चंदा की जवानी दूर है।**' (मधुगीत, गीत सं० ४५)

लेकिन मन यहीं विरम गया। उसकी चाह थी--हर कली को चूमने की, हर तितली से खेलने की, हर बुलबुल को सुनने की और साँझ के बचपने को दुलारने की। गीतकार ने मन को प्रबोधा--'**जवानी के पड़ाव पर तो फूलों को गंध मिलेगी, भ्रमरों का गुञ्जन और कोयल का दर्दीला स्वर सुन पड़ेगा, चाँद की जवानी सुधा बरसायेगी। पर कलियों के गाँव में तितलियों का विहार और संध्या के बचपने में बुलबुल का मधुगीत तो नहीं मिलेगा। अतः विवश हूँ प्रिय! यहीं रुकने को।**' (मधुगीत, वही)

एक शरद् के सुहावने मौसम में छितवन के फूल खिले। पर ये विलगाव के पल ....! कलियों का गाँव छूट गया, यह तो फूलों का नगर है। '**रजनीगंधा की भीनी-भीनी महक मानो इत्र की शीशी खोले मुग्धा अपरिचित यौवन की अँगड़ाई महसूस कर रही हो।**' (छितवन के फूल, गीत सं० ३२) और फूलों के नगर में मधुनीर की बरसात शुरू हो गई। कभी बिहारी ने कहा था—'**झरित दान मधुनीर**' ....बड़ा प्यारा रूपक बाँधा था उस कवि सम्राट् ने। अम्बुज-कोषों से झरते मधुनीर से सराबोर होकर मधुप सुखी होता है, तभी तो कवियों के एक दूसरे शाहंशाह सूर ने कहा—'**मधुप करत घर कोरि काठ में बँधत कमल के पात।**' यह दिल की आँखों का कमाल है। मधुनीर की मिठास ने उस काठ की कोठरी वाले जीव को मधु पाँखों में बँधना स्वीकार कराया।

शरद् से वसन्त तक मधुजल की फुहार व्यक्त प्रकृति को भिगोती रहती है। वे मौसम उसकी याद भी बड़ी मधुर लगती है। '**आह प्रिये! प्रकृति का वह**

मोहक शृंगार · · · · जब धरती हरसिंगार के श्वेत सुमनों से सज जाती थी, जब जलाशयों में जल-पाँखी मधुर प्रेमालाप में डूब जाते और कमल-पुष्पों की हाट में मधुक्रेता भ्रमरों की भीड़ लग जाती थी।' (मधुनीर, गीत सं० १०) यह तो रही बात शारदीय सौन्दर्य की, पर वासन्ती धरती पर कुन्द पुष्पों की सफेदी सोती है। छितवन के फूलों की गंध से कम नशीली आम के फूलों की गंध भी नहीं होती। दोनों की मादकता का कारण मधुनीर ही तो है।

फिर निदाघ पीछे क्यों रहे ? मंदार सुमनों के पुष्पित होने का मौसम तो यही है। इन फूलों की आब की बेमिसाल मादकता मधुपों को दीवाना कर देती है। **'एक-दो नहीं, अनेक अपने वश में नहीं। मधुपों की यह टोली कितनी खुश है · · · · · ग्रीष्म में भी इनका वसन्तोत्सव हो रहा है। इनके नाच-गानों में एक अद्‌भुत मिठास है, जैसे ये होली मना रहे हैं।'** (मधुनीर, गीत सं० ३) ग्रीष्म में वसन्तोत्सव ? चौंकने की बात बिल्कुल नहीं। आप्त-वचन प्रमाण होते हैं। हिन्दी के एक बड़े आचार्य ने लिखा है--**'वसन्त आता नहीं, ले आया जाता है।'** ('वसन्त आ गया है' शीर्षक निबन्ध, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी) मेरा निवेदन भी जोड़े कि यह मधुनीर का कमाल है। जी हाँ, तभी तो **'मंदार के पराग में सना वह अकेला भ्रमर डाल के अकेले फूल को बार-बार चुम्बन से निहाल कर रहा है, उसे रिझाने के लिए मधुर स्वर में गुनागुना रहा है। दूसरा मधुपान में बेसुध फूल की कोमल पंखड़ी के सहारे पड़ा जीवन की सार्थकता का अनुभव कर रहा है।'** (मधुनीर, वही) यदि बिहारी ने यह उत्सव देखा होता तो **'आक कली न रली करैं, अली-अली जिय जानि'** पर पुनर्विचार अवश्य करते।

मीठो भावै लौन पर, ज्यों मीठे पै लौन · · बात पते की है, चाहे कही किसी ने भी हो। लावण्य-रस स्मृति की मधुरिमा से ही रिसता है। छायावादी 'निराला' ने कहा न--**'प्राणधन को स्मरण करते, नयन झरते नयन झरते।'** मेरे गीतकार को भी यह पसंद है--**'मेरी आँखों के सलोने नीर का तुम्हारी स्मृति के मधुनीर से संगम हो जाता है।'** (मधुनीर, गीत सं० १६) माधुरी और लुनाई के संगम पर न्यौछावर होने की तबीयत हो जाती है—**'तुम्हारे आनन-सरोज से झरते स्मित मधुनीर का पायी यह मन-मधुप मधुपान से विमुख हो सलोने तेवर से रिसते रस का आस्वादन कितना मुग्ध होकर कर रहा है। ऐसे ही तेवर**

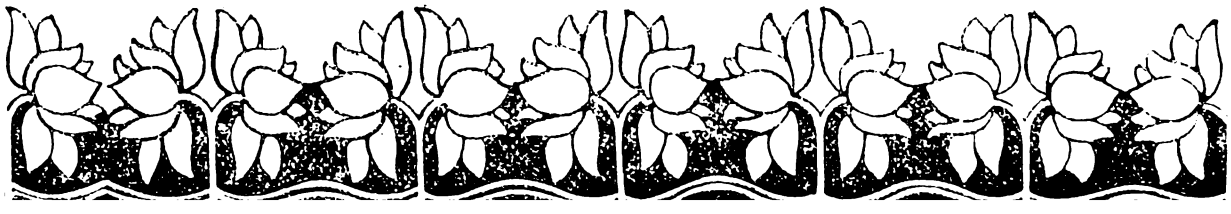

सजाये रहो, प्राण ! मैं न्यौछावर हो जाऊँगा ।' (मधुनीर, गीत सं० ६) माधुर्य पर लावण्य की जीत कैसी रही ?

एक दूसरे छायावादी पंत की स्थापना है--**'मिलन के पल केवल दो-चार, विरह के कल्प अपार ।'** फिर रहस्यवादिनी महादेवी जी भी उनसे पीछे नहीं-- **'मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ ।'** मिलन के पल सचमुच इने-गिने होते हैं। जीवन में दोनों की कभी-कभी आँखमिचौनी होती है। **'किन्तु जिन्दगी में मिलन-विछोह का संघर्ष रात के दीप-झंझा का संघर्ष है ।'** (छितवन के फूल, गीत सं० १७) वियोग उमरदराज होता है। दूरी का दर्द और तनहाई का तीखापन ..... दोनों ही उसे दीर्घजीवी बनाते हैं। और स्नेह बन्धन का शैथिल्य ..... कितना अनुदार, कितना कठोर, कल्पना सिहर जाती है--**'ओह स्नेह-पाँखी ! तेरी तड़पन, बेचैनी, अधीरता .....! सब स्वाभाविक है। यही सृष्टि का नियम है। अतः और उद्विग्न हो मेरे मन-पाँखी, ... पछतावे की जिन्दगी के ये संकेत न कभी उदार हुए हैं और न होने को हैं। अभी तो स्नेह बन्धन की जकड़न थोड़ी ढीली हुई है, अभी तो जीवन का सूनापन थोड़ा-थोड़ा ही चुभता है, अभी तो उदासी की बेचैनी झलक मात्र दिखाकर चली जाती है, पर वह नाजुक समय दूर नहीं जब वह अपने कुलिश कदमों से तेजी से आकर कोमल सरस भावनाओं को रौंद न दे ।'** (मधुनीर, गीत सं० ३०)

पर शाश्वत है अनुराग। उसकी पावनता मेरी नेह प्रतिमा का शृंगार है। उसी के पावन नीर में नहाकर धन्य होना अभीष्ट है। 'तुम्हारी अनुराग कामना की पावन गंगा कितनी दूर से चली आई, यह जब मैं निहारता हूँ तो मेरा हृदय अनुराग नीर में नहाकर धन्य हो जाने को उत्सुक हो तुम्हारी ओर बढ़ जाता है, मैं इसी अनुराग-नीर में सरावोर हो जाता हूँ ।' (मधुनीर, गीत सं० ३८) इसी-लिए आकांक्षा है कि **'अनुरागमय ! ..... जब तुम आ जाते तो हृदय का यह फूल तुम्हें समर्पित कर तुम्हारे अनुराग का वरदान पा जाता और जब तुम चले जाते स्मृति की सरोजिनी तुम्हारे अनुराग का मधुनीर बरसाती ।'** (मधुनीर, गीत सं० ५०)।

तुलसी जयन्ती, सं० २०४२

माधवप्रसाद पाण्डेय

⊙

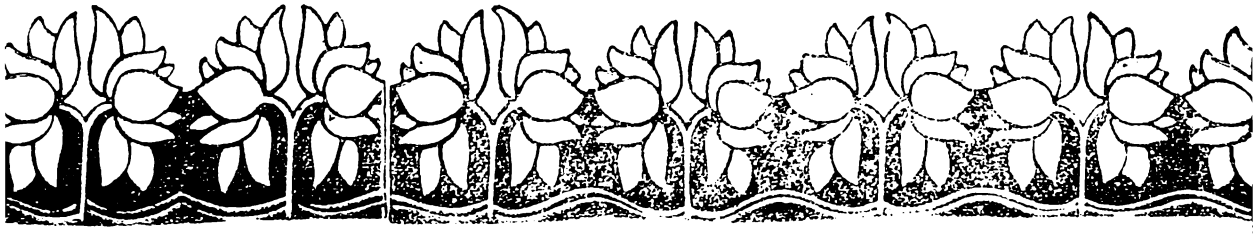

मधुनीर

साथी !

।। एक ।।

साथी !

इतने शीघ्र आकुल हो जाओगे, ऐसा मैंने सोचा भी न था। अभी काल-कली की पंखुरियाँ बिखर भी न सकी थीं, फिर अवधि की असीमता क्यों सताने लगी ? अभी जीवन-मंजिल की ओर रंचमात्र ही तो बहाव हुआ था फिर तुम्हें थकान-सी क्यों आने लगी ? अभी तो मन मिलन-मधु से भींगने वाला था फिर यह विरह की झंझा क्यों जीवन को अस्त-व्यस्त करने लगी ? अभी तो नयन मिल भी न पाये थे फिर बीच ही में ये फिरने क्यों लगे ? अभी तो लालसाएँ कुँवारी ही हैं, फिर उदासीनता क्यों छाने लगी ?

काश ! उत्तर मिलता। ओह ! वाचालता मूकता में बदल गयी। ऐसा क्यों मीत ? समय की कली को यौवन आने दो, अवधि ससीमा होकर बीत जायेगी और तब आकुल मन व्याकुल हो उठेगा अवधि की असीमता के लिए। जीवन-मंजिल की कुछ दूरी तय करने के पश्चात् पीछे मुड़कर बार-बार निहारोगे तब दिल प्यार के लिए बिलखेगा। मिलन-मधु के स्वाद से वंचित रहे तो वियोग का कसैलापन जिन्दगी में भर उठेगा और तुम्हारे नयन फिर गये तो मेरी दुनिया ही बदल जायेगी। कुँवारी साधों को जी-भर क्रीड़ा करने दो अन्यथा उदासीनता के दामन में तड़पना ही पड़ेगा जीवन भर।

७-५-६९

⊙

रूप ! हुलास भरे

॥ दो ॥

रूप !

हुलास भरे नयनों से क्या देखते हो मेरी ओर·····उदास जिन्दगी ग्रीष्म की धरती जैसी रसहीन हो गयी है, नमी कहाँ है इस जीवन में ? तुम मुझे गले लगाने को इतने उत्सुक, उत्कण्ठित नयन से निहारते, बाँह खोले·····पर मुझे अंकपाश में बाँधने की भूल यदि कर बैठे तो जल जाओगे। तुम्हारा लावण्य पिघलकर वह निकलेगा और फिर बहते-बहते सूखकर निःशेष हो जायेगा।

तुम नहीं मानते प्रिय ! बढ़े ही आ रहे हो ? ओह ! कितनी शीतल तुम्हारी भुजाओं की छाया है। जिस रूप की छाया इतनी शीतल वह रूप स्वयं कितना सुखकर होगा ? पर मुझे निहाल न करो मेरे शुभ ! अरे ! यह क्या·····क्यों नयन गीले हो गये ? नेत्रों के किनारे आर्द्र दीखने लगे हैं। तो तुम मेरी खातिर रो रहे हो,·····न न····· ऐसा न करो, प्रिय ! मैं तुम्हारा ही हूँ बिल्कुल तुम्हारा। तुम्हें मुझ पर दया आयी,····· मेरे लिए हृदय का स्नेह-रस बरसाने लगे। ओह ! सचमुच उदास जीवन की माटी पूर्ण आर्द्र हो गयी।

बस ऐसे ही अपने नयनासव से मुझे भींगने दो,·····जिन्दगी आर्द्र एवं मदिर हो जायेगी। अब तो मैं ही आतुर हो उठा हूँ प्रिय ! अपनी नयनसुधा के चषक से मेरे व्याकुल अधरों को अमरता पिला दो। फिर·····यह बियाबान जिन्दगी हरियाली से भर उठेगी।

३-४-७०

⊙

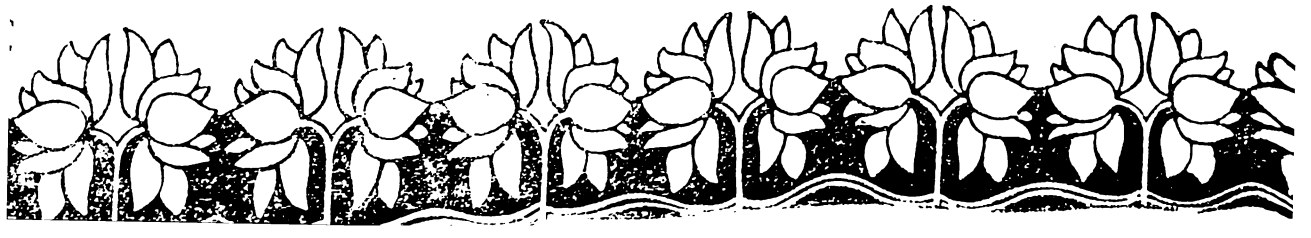

रूप ! निदाघ

॥ तीन ॥

रूप !

निदाघ के मदमाते मंदार-सुमनों का नशीला सौन्दर्य मधुपों को दीवाना किये हुए है। उधर निहारो—एक-दो नहीं अनेक अपने वश में नहीं हैं। मधुपों की यह टोली कितनी खुश है, ·····ग्रीष्म में भी इनका वसन्तोत्सव हो रहा है। इनके नाच-गानों में एक अद्‌भुत मिठास है जैसे ये होली मना रहे हैं। मंदार के पराग में सना वह अकेला भ्रमर डाल के अकेले फूल को बार-बार चुम्बन से निहाल कर रहा है, उसे रिझाने के लिए मधुर स्वर में गुनगुना रहा है। दूसरा मधुपान में बेसुध फूल की कोमल पंखड़ी के सहारे पड़ा जीवन की सार्थकता का अनुभव कर रहा है।

और भी देखो, ·····फूल की कोमल पाँख मधुपायी भ्रमर के बोझ से टूट गयी है और भ्रमर झटके से सचेत होकर उड़ चला दूसरे फूल की ओर। फूल की पाँखें बिखर कर डाल से अलग हुईं और हवा ने उन्हें माटी की गोद में सुला दिया।

जरा एक दृष्टि उस ओर भी·····चुम्बन और अंकपाश के विश्वासी उस पुष्प ने हृदय का सारा रस अपने एकाकी प्रिय को दे डाला। रस शेष हुआ और उड़ चला यह विसासी भी दूसरे फूल को धन्य करने। टूटे दिल इस फूल को भी वायु ने माटी की गोद दी।

देखो न, ·····माटी की गोद में पड़ी बिखरी पाँखें, टूटे-फटे दिल वाले फूलों की भी एक लम्बी पाँत, सूखे-मुरझाये सुमनों की उससे भी बड़ी पाँत पड़ी है पर उधर मधुप नाचते नहीं, गाते नहीं, भूल कर उधर उड़ते भी नहीं, उधर बड़ी शान्ति है, मरघट का सन्नाटा है। दुनिया में हर रूप की यही कहानी है।

१९-४-७०

⊙

रूप ! जब तुम

॥ चार ॥

रूप !

जब तुम आये ..... मेरे अधखुले नयन-द्वार पूर्ण उन्मुक्त हो गये और फिर क्या, आ विराजे तुम हृदय में। उन पलों की जब याद आती है आर्द्र हो उठता हूँ। ओह ! तब कितना मदहोश हो उठा था मैं। अधखिली कली-सी मीठी मुस्कान से रंजित तुम्हारा मुखड़ा और उस पर छाई मासूमियत की एक पर्त जैसे पंकज-कोष पर झलकते मधुनीर के कन हों। सच मानो प्राण ! तब मेरे मन-मधुप की पाँखें मधुरस के इन कनों से भींग उठी थीं। कितनी आतुरता थी तुम्हारे लिए ..... तुम्हारी मादकता में डूब गया था मैं। तब बेचैनी के बन्धन तुम्हें कस लेने के लिए तत्पर हुए थे। अपने अंकपाश में आवद्ध कर बेचैनी को चैन देना चाहता था मैं। तभी तुम नयन-द्वार से हृदय में समा गये और मेरे हृदयवासी हो गये।

१७-१-७१

⊙

प्राण प्रिय !

॥ पाँच ॥

प्राण प्रिय !

प्रतीक्षा-रत इस हृदय का दर्द तुम्हें जरा भी न महसूस हुआ। बेचैनी करुणा में नहा उठी। टकटकी लगाये, हृदय की बेचैनी से व्याकुल नयन नम हो गये ..... करुणा बेचैनी को अपने में समेटे नयनों की राह बहने लगी। अरे ! प्रतीक्षा की अवधि जो बीत गयी। ..... पर, फिर हृदय ने समेटा दर्द अपना, करुणा का बहाव रुक गया, रसीले नयनों में तुम्हारी छवि का चित्र उभरने लगा। इन नेत्रों को तुम्हारे रूप का ध्यान जो अभीष्ट है। ध्यान आया रूप का तुम्हारे और आकर मेरी बेचैनी को सहलाने लगा।

और मैं हृदय की पीड़ा को सन्तोष का एक शीतल स्पर्श देता हूँ, पर यह भी कब तक ? आह, तुम्हारी निठुराई का ताप मुझे कितना सन्ताप दे रहा है। सन्तोष की आर्द्रता वाष्प बनकर उड़ी जा रही है। ..... कब तक आओगे प्रियतम ! प्रतीक्षा, कब तक करूँ तुम्हारी ..... निहारो इधर—तुम्हारी निठुराई से सूखे इन नयनों में पुनः जल-कण झलकने लगे। हृदय की करुणा पुनः उमड़-उमड़ कर इन्हें धोने लगी है। बोलो मेरे प्रांण ! कब तक तरसाओगे ?

१८-१-७१

⊙

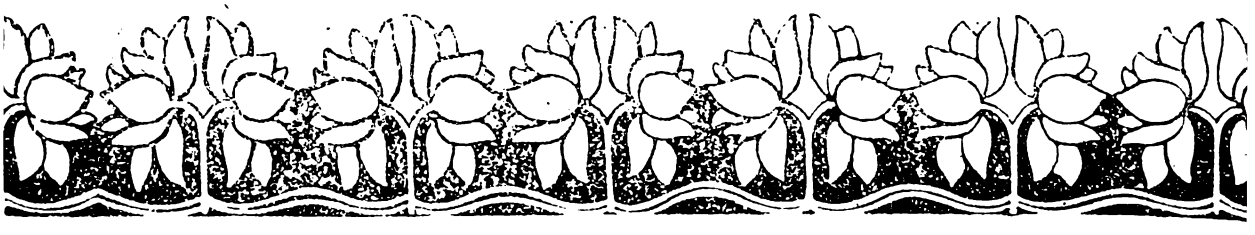

प्रिय ! मासूम चितवन

॥ छह ॥

प्रिय !

मासूम चितवन पर आज यह तेवर, दृष्टि-विलास की यह अनूठी शैली कितनी हृदय-स्पर्शिनी ..... ऐसे ही निहारो प्रियतम ! मैं अघा जाऊँगा। तुम्हारे आनन-सरोज से झरते स्मित-मधुनीर का पायी यह मन-मधुप मधुपान से विमुख हो सलोने तेवर से रिसते रस का आस्वादन कितना मुग्ध होकर कर रहा है। ऐसे ही तेवर सजाये रहो, प्राण ! मैं न्यौछावर हो जाऊँगा। हरसिंगार के झरते मादक गंधयुक्त पुष्पों जैसी मनोरम, सरल एवं नशीली मधुमयी वाणी के अभ्यासी ये कान मूक तेवर-स्वर के भीतर के कसैलेपन से इतने पर भी अतृप्त-से ही हैं। ऐसे ही ध्वनित होते रहो मेरे सर्वस्व ! मैं झूम उठूंगा।

२०-१-७१

⊙

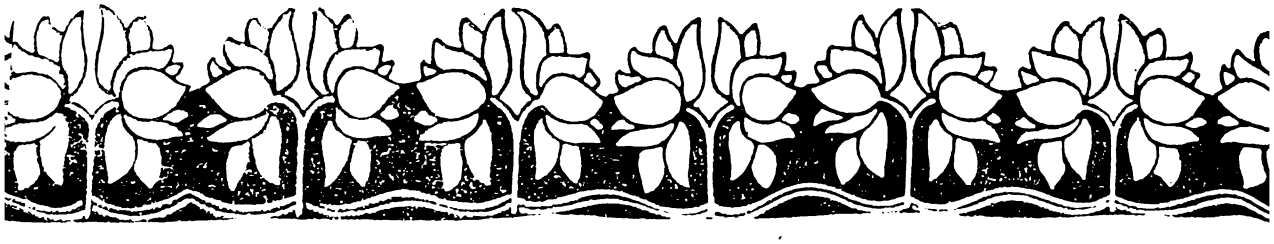

स्नेहमय ! प्रथम दर्शन

।। सात ।।

स्नेहमय !

प्रथम दर्शन में ही नयनों ने हृदय की बात कह दी। तेरी संकोच से बोझिल झुकी पलकें जब उठीं मेरे नयनों ने स्नेहासव से भरे दो स्नेह-सर देखे और देखते ही मन-माँझी आकुल हो उठा। उसने स्नेह-सर के तीर पर अपनी चितवन-तरी लगा दी। वह चितवन-तरी से लटक गया स्नेह-सर की ओर और नेहाम्बु को पार कर जाने कैसा-कैसा होने लगा था। पिपासा बढ़ती जाती थी और माँझी अतृप्त·····"और-और" का भाव उसे आन्दोलित कर रहा था। तभी आकुल नयनों से मदिर नयनों ने सैन-भाषा में कहा, "अम्बु नहीं आसव है। तीर से तरी हटा ले।"·····पर भोला माँझी न माना और नजर की कश्ती साहिल पर छोड़कर खुद स्नेहासव में डुबकियाँ लेने लगा। आह प्रिय ! उन पलों की स्मृति आज भी कितनी मादक है,·····मैं झूम उठा हूँ और फिर·····फिर मैं कितना तृषित, कितना अधीर हो उठता हूँ। आह ! वह तेरी पहली झलक !

२४-१-७१

⊙

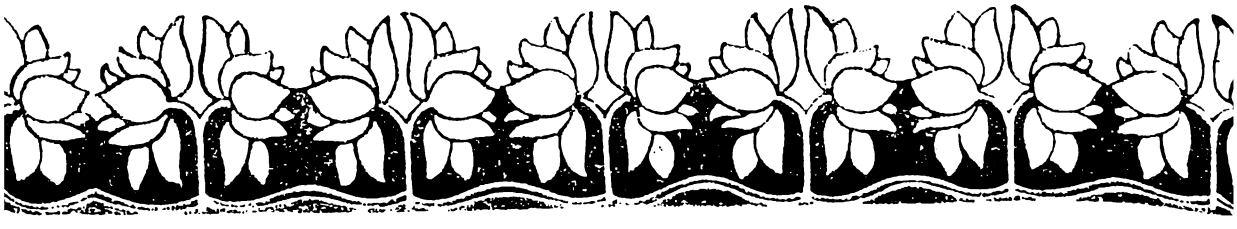

प्रिय ! जब

॥ आठ ॥

प्रिय !

जब तुम आये मेरी प्रतीक्षा-रत बेचैन आँखों ने चैन ली, · · · · व्याकुल मन सुखनीर में नहा उठा । तुम्हारी डगर निहारती ये आँखें तुम्हारा चन्द्रानन निहार कर इतनी हसीन लगीं मानो अमियनीर में नहाती दो विकसित कुइयाँ और मन की सुन्दरता · · · · · · ! मैं कैसे कहूँ कि मधुर संगीत-सी मुझे ही मधुर लगी और तभी तुम एकाकी मेरी ओर अभिमुख हुए, गोधूलिवेला के एक अकेले नक्षत्र सदृश अपनी रूप-राशि को मुस्कान के आभूषण से सजाये । आँखों की राह तभी यह दिव्यता हृदय की धरती पर उतर गयी । आँखें अघा गयीं, पर मन की तृषा बार-बार आँखों को अपनी अतृप्ति का संदेशा देती रही ।

२८-१-७१

⊙

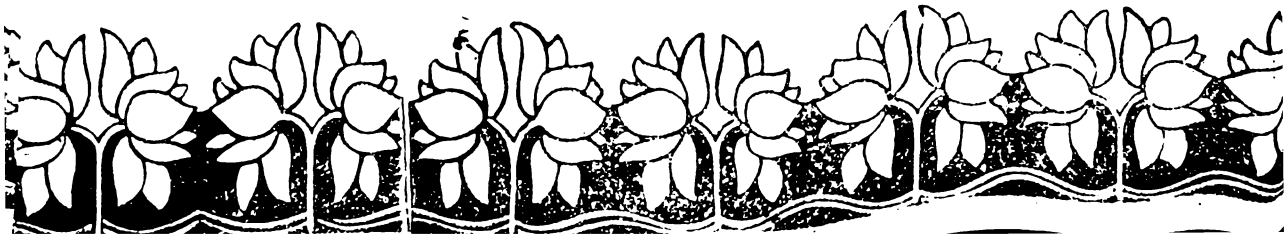

वीणापाणि !

॥ नौ ॥

वीणापाणि !

वीणा पर तेरी उँगलियाँ निहारते ही मन मुग्ध हो गया। लालसा है मेरी मन-वीणा पर अपनी उँगलियों को एक बार गतिमय कर दे, जीवन-संगीत की मधुर एवं मादक स्वर-लहरी से जिन्दगी रागमयी हो उठे।

हंस वाहिनी !

तेरे सयाने हंस का भोला रूप कितना विमुग्धकारी है। यह श्वेत रंग यश-रंग है जिसका प्रतीक है कुन्दहार जो तेरे गले में पड़कर हृदय-प्रदेश पर फैल कविजनों को अपूर्व प्रेरणा से प्रेरित कर उनके हृदय को श्वेत रंग से भर देता है। मैं इस धवलिमा में भींग रहा हूँ।

माँ भारती !

तेरे आनन का तेज कितना महिमामय है। सच, माँ ! मेरे हृदय का कोना-कोना उसी तेज के उजाले से भर उठा। भाव-सुमनों की माला पर फैला यह दिव्य-आलोक तेरी उसी महिमा का प्रकाश है। मेरी कामनाएँ इसी आलोक में स्नान कर रही हैं, देवि ! दयामयि !

३१-१-७१

⊙

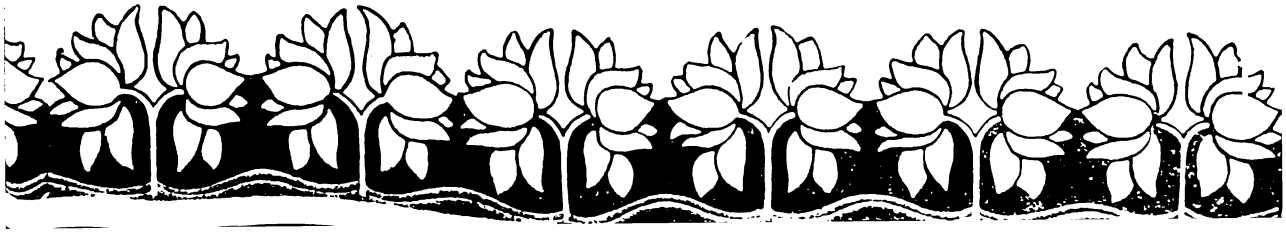

वसंतदूतिके !

॥ दस ॥

वसन्तदूतिके !

मेरे कान तुझसे वसन्तागम की सूचना पाने के लिए बेसब्र हो रहे हैं। शिशिर का यौवन ढल गया, उसका चेहरा उदास हो गया है, वह क्षीण हो पीली पड़ गयी है। पतझर सम्पूर्ण प्रकृति पर छा गया है। पेड़-पौधे ठूँठे हो चले हैं और धरती पीले- मटमैले पड़े सूखे-अधसूखे पत्तों से भर उठी है। प्रकृति की दीनता देख तबीयत भर आती है। मुक्त-कुन्तला, निर्जल फटी-आँखों वाली विरहिन सरीखा प्रकृति का यह उदास रूप कितना करुण हो चला है। पर जाने कहाँ तू मौन हो बैठी है।

सजनि !

मुझे याद आती है, जब वर्षान्त के विदा होते जलहीन बादलों की ओर चंचल दृष्टि से निहार खंजनों ने धरती के नव शृंगार की सूचना दी थी। आह प्रिये ! प्रकृति का वह मोहक शृंगार ..... जब धरती हरसिंगार के श्वेत सुमनों में सज जाती थी। जब जलाशयों में जल-पाँखी मधुर प्रेमालाप में डूब जाते और कमल-पुष्पों की हाट में मधुकेता भ्रमरों की भीड़ लग जाती थी।

मधुरे !

रसाल मञ्जरियों की नशीली सुरभि वायु से मिल चुकी है। कुन्द पुष्पों की सफेदी धरती पर पड़ी सो रही है। रसमाते ठूँठ नव-पल्लवों की प्रतीक्षा में खड़े हैं। प्रिये ! तू आम की डाली पर मञ्जरियों के बीच आकर बैठ जा कि तेरी श्यामता में डूबकर संसार उज्ज्वलता पा जाये। बस वसन्त का सन्देश वहीं से अपनी मधुमयी तान में भर कर उँड़ेल दे कि वासन्ती मादकता में सभी नहा उठें और और नव-कुसुम-पल्लवों से सजा, नवल मधुरस से पूर्ण घड़ों से धरती को रसमयी करके प्रकृति अपने हाथों से उसका शृंगार कर दे।

१०-२-७१

⊙

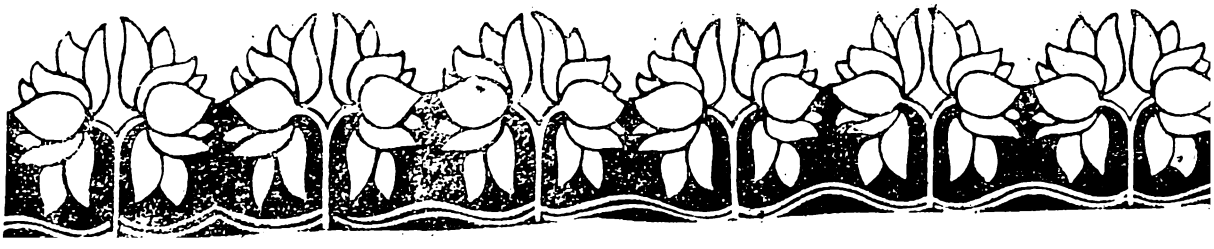

रागी मेरे !

॥ ग्यारह ॥

रागी मेरे !

तुम्हारे राग की अरुणिमा में मेरा मन गोते लगा-लगा कर रंगीनी की मांसलता पा गया है। यह गाढ़ा रंग मेरे जीवन के इन पलों को रस-रंग में भिगो रहा है। राग-मधु से भरे चितवन-चषकों की मदिर लाली का नशा मुझे बेसुध किये जा रहा है पर मैं अभी और पीना चाहता हूँ। ऐसे ही निहारते रहो मेरे साकी ! मुझे पीने का रस मिलता रहेगा। कितनी मादकता, कितनी मिठास है इन मधु-प्यालियों में।·····ऐसे ही इन्हें मेरी ओर बढ़ाये रहो, मेरे मादक ! मेरी प्यासी आँखों एवं अतृप्त अधरों को तृप्ति मिलती रहेगी। अम्बुज-कोषों से झरते मधुनीर में सराबोर होकर मधुप जैसे सुखी होता है, मुझे भी अपने नयन-कोषों से झरते रागनीर में डूब कर सुखी होने दो, मेरे रागी !

१-३-७१

⊙

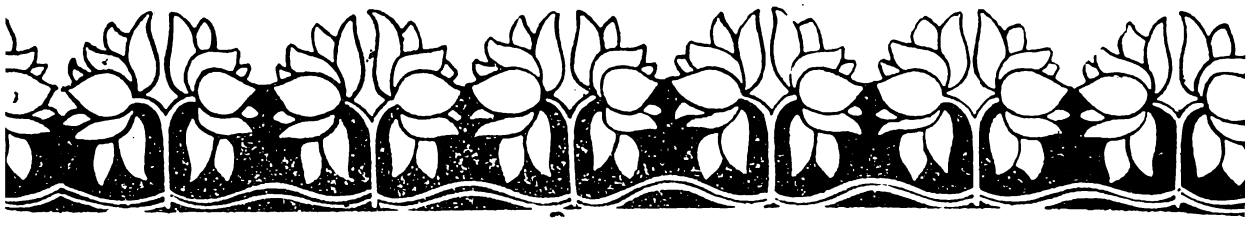

प्रियवर ! दूरी

।। बारह ।।

प्रियवर !

दूरी के ये क्षण कितने बोझिल लग रहे हैं, मैं तुम्हें कैसे बताऊँ·····निष्ठुर ! मुख मोड़ कर जाना था तो दिल के द्वारे दस्तक ही क्यों दी थी ? कितनी मासूमियत थी जब तुमने मेरे दिल की दुनिया में प्रवेश किया था, ओह ! कितने मधुर थे वो पल जब तुम अपने प्रेमासव से मुझे मदहोश रखते·····उन मदिर क्षणों की स्मृति आज हृदय में टीस उत्पन्न कर रही है·····और आज के ये वदनसीव लम्हे कितने उदास, दर्द से नहाये, काटते-से लगते हैं। यदि नयन फेरने ही थे तो निहारना ही न चाहिए था। मुझे उन कुहुक-भरे चितवनों की स्मृति आज इन निठुर पलों में कितनी पीड़ा दे रही है, प्यारे ! इतनी रुखाई भला क्यों ? यह किस कुसूर की सजा है ? यदि मैं कुसूरवार हूँ तो मुझे अपने दिल की कारा में कैद कर लो, कभी मुक्त न करना, पर अपने नयनों की मुस्कान से मुझे निहाल करते रहो।

१२-३-७१

⊙

प्रिय ! जब तुम

॥ तेरह ॥

प्रिय !

जब तुम आये · · · · · · आम के फूलों की मीनी-मीनी महक-सी सुकुमार मुस्कान तुम्हारे चेहरे की मासूमियत से आँख-मिचौनी-सी कर रही थी । मुस्कान की इस मादकता में मैं भींग उठा ।

जब तुमने निहारा · · · · · · · · ओह ! झुकी नजरों के उठते ही पलकों के पर्दे से झाँकती शरमदार आँखों के बीच खेलती मनसिज कुमारियों-सी दोनों पुतलियों की तरलता बरसने लगी । मैं सरलता की धार में नहा उठा ।

और जब तुम बोले · · · · · · · · एक-एक शब्द हरसिंगार के नाजुक फूलों की तरह झरने लगे और मेरे हृदय-देश की धरती भर उठी । मैं मुग्ध भ्रमर-सा रस-स्नात हो उठा ।

१४-३-७१

⊙

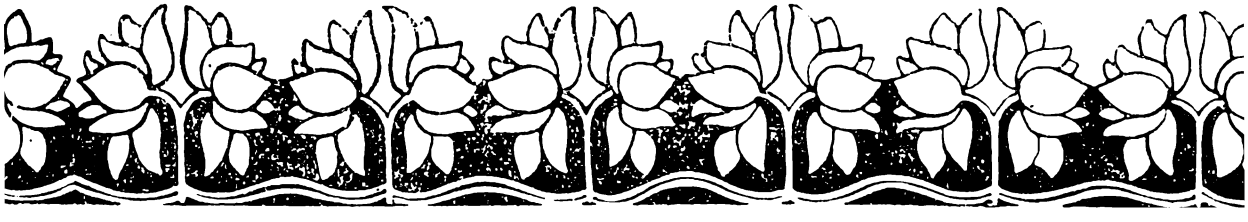

स्नेहमय ! प्रेम-पुष्पों का

॥ चौदह ॥

स्नेहमय !

प्रेम-पुष्पों का यह हार अपनी सुकुमार अँगुलियों की पोरों पर सँजोये मेरी ओर बढ़े चले आ रहे हो। हार के इन पुष्पों की हर पंखड़ी तुम्हारे अनुराग के रंग में रँगी हुई है ·····मेरी आँखों में यह रंग भर उठा। इन पुष्पों से तुम्हारे स्वच्छ स्नेह की मधुर गंध उठ रही है,·····मीठी सुरभि की मादकता मेरे हृदय-देश पर छा गयी और मैं अपनी गर्दन झुका रहा हूँ इन प्रेम-पुष्पों के सुकोमल स्पर्श के लिए·····। अब डाल दो मेरे गले में यह हार निःसंकोच, मेरे अपने, मैंने इन्कार ही कब किया है ?

और यह फूलों से भरी अञ्जलि·····अपनी साध-सुमनों की अञ्जलि····इसे मुझ पर उँड़ेलना चाहते हो ? हृदय-रस में डूबे फूलों की यह पाँत·····हर फूल की पाँखें तुम्हारी श्रद्धा के रस में पूर्ण हैं। इसे तुम मेरी ओर बढ़ा रहे हो·····? मुझे स्वीकार है।

पर एक बात कहूँ ? तुम्हारे साध-सुमनों की यह पाँत मुझे बेहद अच्छी लगती है, इन्हें प्यार करने को बहुत जी चाहता है। मेरी चाह है अपने मनोरथ-मुकुल में पलते स्नेह-रस से इन फूलों को नहला देने की। देखो प्रिय ! मुकुल-हृदय में दरार·····देख रहे हो न·····उसमें पलता स्नेह, सौरभ बन कर वह चला तुम्हारी पुष्पाञ्जलि का स्पर्श पाने·····पाकर निहाल होने। यह स्नेह-सुरभि तुम्हारे साध-सुमनों की हर पंखड़ी के रस-बिन्दुओं में घुल-मिल जाये, यही, बस यही।·····

१५-४-७१

⊙

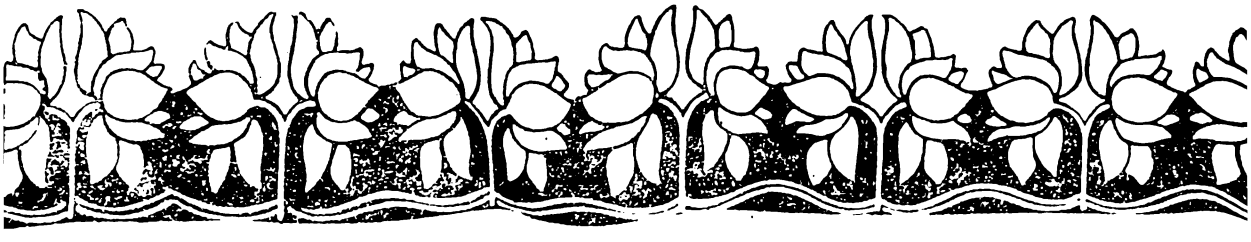

प्रिय ! तुम

॥ पन्द्रह ॥

प्रिय !

तुम न आये। इन प्रतीक्षारत आँखों ने श्रान्त हो पलकों की चादर समेट ली। नयन-रस के कन पलकों से ढुलक कर बरौनियों पर छा गये। ओह ! मन-सदन-निवासिनी आशा का धीरज टूट गया और वह नयन-द्वार तक चली आयी। अधीर मन बार-बार उसे परिरम्भ में आवद्ध करना चाहता था, पर अब वह किसी प्रकार नहीं रुक रही। बड़ी देर तक यह खींचतान, धरपकड़ चली। सहसा एक झटका लगा। यह क्या ? मन के हाथ से आशा छूट गयी-बेसहारा मन अचेत हो निराशा की गोद में जा गिरा। बरौनियों का दामन छोड़ आशा अब कपोलों की धरती भिगोने लगी · · · · · तुम जो नहीं आये।

तभी चेतना ने अपने कोमल स्पर्श से मन को छेड़ा। यह क्या ? निराशा भी मन को चेतना की गोद में छोड़ कर नयन-द्वार पर आ गयी। फटी आँखों से निराशा बाहर झाँक रही है, किन्तु मन चेतना के सहारे उठ कर देखता है—"नयी आशा" तेजी से उसे आच्छादित करने में लगी है। अरे ! यह "नयी" भी नयन-द्वार की ओर बढ़ चली ? पर इस बार मन उद्विग्न नहीं। यह "नयी" भी कपोल-देश पर बह चली, पर मन-देश भी इससे स्नात है। अरे, तुम जो आ गये।

१८-४-७१

⊙

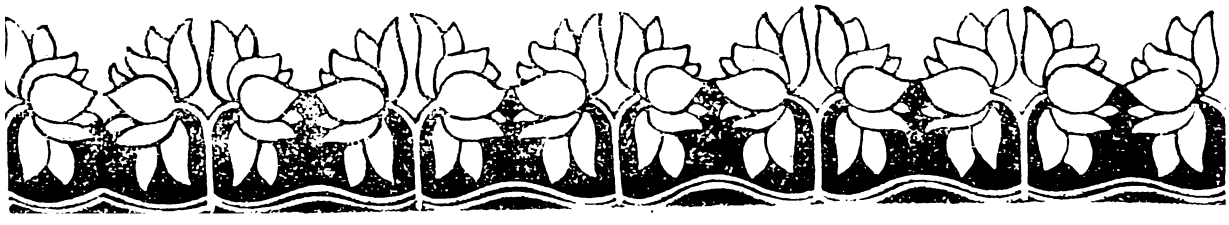

प्रिय ! मैं

॥ सोलह ॥

प्रिय !

मैं हँस नहीं पाता हूँ। जब हास मुझे छूने आता है, तुम्हारी एक तस्वीर मेरे मानस में उभरने लगती है। मेरे मानस का कगार टूट कर तुम्हारी याद की हिलोर में घुलमिल जाता है। कटे कगार सदृश टूटे मन को नयनों की बरसात भिगो-भिगो कर आर्द्र कर देती है। मेरा गीला मन तुम्हारी स्मृति-सरि में नहाने लगता है। मेरी आँखों के सलोने नीर का तुम्हारी स्मृति के मधुनीर से संगम हो जाता है। नयन के नीर-कन ढुलकते हैं और मन कूल से होकर स्मृति-नीर की वीचियों में समा जाता है।

आह प्रिय ! मन-प्रदेश तो भींग कर पंकिल हो ही गया था, तुम्हारी तस्वीर भी भींग गयी। ओह ! तुम्हारी तस्वीर के नयन-कोरों पर जलविन्दु झलकने लगे। हाय ! मेरी आँखों ने रोकर तुम्हें भी रुला दिया। वियोग की यह टीस,—मेरी आँखों को मजबूर कर देती है। पर अब नहीं, नहीं मेरे प्राण ! तुम मत रोओ। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं हँसूंगा। मेरे कलेजे पर उभरी तुम्हारी तस्वीर की मुस्कान के सहारे मैं बिछुडन की पीर झेलते हुए जी लूंगा।

२८-४-७१

⊙

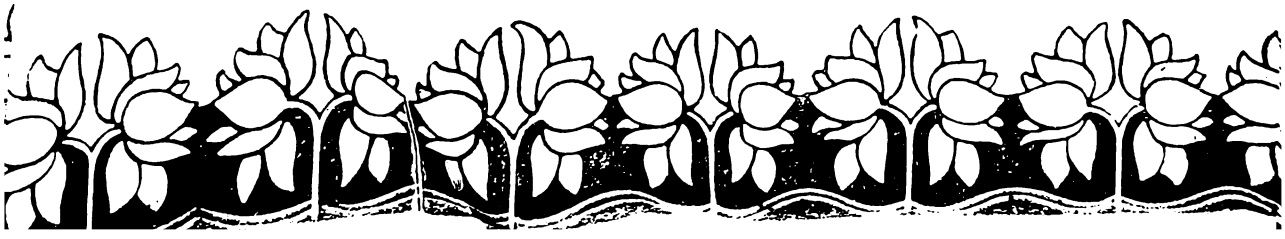

प्रिय ! तुम्हें

॥ सत्रह ॥

प्रिय !

तुम्हें आता देख उदास सूनी आँखें हँसने लगीं। उदासी कब सरक गयी, अज्ञात ·····और प्रसन्नता से दोनों तारिकाएँ मींग उठीं। सच मानो प्रियतम, आँखों की राह दिल तक पहुँचा सूनेपन का नीरद फटकर यत्र-तत्र बिखरा या कहाँ गया पता नहीं। तुम्हारे दर्शन का पहला झोंका ही हृदय-व्योम को स्वच्छ कर गया। पुलकावली की आकाश-गंगा मुस्कराने लगी और उसका दुधिया सौन्दर्य मेरे हृदयाकाश पर छा गया।

हृदयेश ! व्योम की रजत-नीरा की उज्ज्वलता से तुम्हारा हृदय जगमगा रहा है और वह आलोक मेरे हृदय को भी आलोकित कर रहा है। तुम्हारे आनन पर छाई मधुरिमा इसी रजत मन्दाकिनी की मीठी लहरों-सी सुन्दर है। मेरी नयन-वीथी की तारिकाएँ इन मधुमयी लहरों में डूब-डूब जाना चाहती हैं। हृदय का नीर इन्हीं वीथियों से निकल कर इन लहरों के दुधिया जल में मिलकर एकाकार होना चाहता है। अब इन्हें मिलने से कोई न रोक सकेगा।

२९-५-७१

⊙

मेरे सर्वस्व !

।। अठारह ।।

मेरे सर्वस्व !

तुम चले गये इन हँसती आँखों को उदास कर। निरीह पाँखी परेवा-सी ये लाचार आँखें तुम्हें जाते हुए देखती रहीं और तुमने गर्दन झुका ली, आँखें फेर लीं, और तेज डग डालते चले गये। नयनों का हास नीर-कन बन कोरों में उलझकर झलकने लगा, पर तुमने मुड़ कर देखा भी नहीं। तुम्हारे कदमों की आहट कानों में ध्वनित होती रही और ज्यों-ज्यों तुम आगे बढ़ते गये दूर के लोक-संगीत के माधुर्य-सी आहट दूर होती गयी, दर्द देती गयी।

सच मानो मेरे जीवन ! तुम्हारी निठुराई की यह मुद्रा मुझे तनिक भी विस्मृत नहीं होती। उसी के ताप से नयन-रस सूख गया और मैं लुटे राही सदृश खड़ा रहा, निराश तथा मूक और कभी साहस बटोर हृदय के स्नेह से दृष्टि-पथ को गीला कर उस पर छाई निराशा की सफेदी को धोने का असफल प्रयास करता रहा, तो कभी चितवन के तीर पर स्नेह को बिठा तुम्हें उसी के माध्यम से पाना चाहता था। पर·····काश ! तुम दृष्टि घुमाकर एक बार मुझे देख सकते।

३१-५-७१

⊙

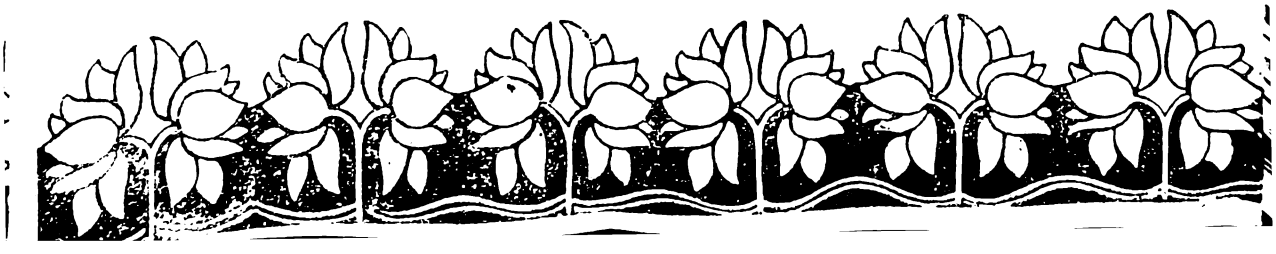

प्रिय ! जब तुम

॥ उन्नीस ॥

प्रिय !

जब तुम मुझे याद आते हो नयन उमड़ने लगते हैं और तभी तुम्हारी मासूम अदाओं से पूरित तुम्हारी तस्वीर बिजली-सी कौंध जाती है। मेरे हृदय का हर कोना तुम्हारे रूप-सौन्दर्य से जगमगा उठता है · · · · · पर तभी तुम्हारी स्मृति के नीर-कन ढुलक पड़ते हैं। ओह ! तुम्हारा चाँद-सा मुखड़ा याद आता है और हृदय का समुन्दर हाहाकार कर उमड़ने लगता है।

काश ! भाव-लहरियों के शिखर इतने ऊँचे होते कि चाँद को छू लेते और चाँद की रजत-रश्मियाँ हृदयार्णव के भाव-कनों को चूम लेतीं। ऊर्मियों और रश्मियों का मधुर संगम · · · · · कल्पना रंगीन हो उठती है। क्या ऐसा होगा, प्रियतम !

२-६-७१

⊙

सुन्दर !

॥ बीस ॥

सुन्दर !

तुम्हें देखता हूँ, अपलक देखता हूँ और तभी आँखों की भावुकता उमड़ने लगती है। तुम्हारी आँखों का सम्मोहन मेरी आँखों पर छा जाता है और फिर आँखों की राह पैठ कर हृदय को आच्छादित कर लेता है। हृदय विवश कर देता है आँखों को और तब हृदय की चाह पलकों पर उभर आती है। जब चाह से बोझिल पलकें तुम्हारी ओर उठती हैं····· सम्हल कर निरखता हूँ तुम्हारी आँखों में····· लाल डोरों में मस्ती, पुतलियों में मादकता, कटाक्षों में नुकीलापन, सभी कुछ तो है,····· मैं सभी कुछ देख पाता हूँ, पर तब मैं विभोर हो जाता हूँ जब तुम अपनी सादी-मासूम पलकें उठा मुझे निहार कर अपने चितवन की सुकुमार निरीहता से सराबोर कर देते हो।

वह पल····· ओह ! मैं कैसे कहूँ····· वही तो वह पल है जब मैं तुम्हारे सम्मोहन में डूब जाता हूँ, जब तुम्हारे चितवन से मासूम-रस के कन झर-झरकर मुझे भिगो देते हैं और मैं तुम्हें अपलक देखता रह जाता हूँ, मेरे जादूगर !

४-६-७१

⊙

प्रियतम ! दूरी

।। इक्कीस ।।

प्रियतम !

दूरी का दर्द और तनहाई का तीखापन·····दोनों ही जीवन-राग के अनमिल स्वर सदृश ध्वनित हो रहे हैं। यह मालती लता है, जिसके सफेद फूलों के मनहर गुच्छे अपनी मीठी महक बिखेर रहे हैं·····ओह ! पर इन गुच्छों के बीच-बीच में सूखे, मुरझाये, ललछौहें बदरंग फूल भी तो हैं जिनकी ओर दृष्टि बरबस उठ जाती है। सौन्दर्य की यह विरूपता आँखों में चुभ रही है जैसे·····मुझे भी विछोह की यह वेला त्रास दे रही है।

प्रिय ! आज मैं तुमसे दूर, बहुत दूर एकाकी पड़ा हूँ और जिन्दगी के बदरंग फूलों का ढेर जैसे आँखों में भर रहा है। एक बेसहारा जिन्दगी दर्द की हवा में झूल रही थी तभी मालती के सफेद फूलों की मीठी गंध की बारीक लकीर-सी तुम्हारी तस्वीर मेरे मन के आईने में झलकने लगी। मेरी स्मृति के अलबम के पन्ने फड़फड़ाने लगे हैं और तुम्हारे अनेक चित्र मेरी चितवन-डगर पर विचरने लगे हैं। मैं भींग उठता हूँ कभी पाटल के मधुर हास में तो कभी नहा उठता हूँ मादक चम्पा की मुस्कान में।

१४-६-७१

⊙

INSTITUT OF ADVANCED
97780

प्रिय ! तनहाई

॥ बाइस ॥

प्रिय !

तनहाई के इन पलों में तुम्हारी स्मृति की हरियाली मेरी इन आँखों में भर उठती है। ये असाढ़ के दिन,·····बहु प्रतीक्षित नीरदों के आगमन के दिन हैं, पर वे इधर आना भूल गये हैं तुम्हारे सन्देशों की भाँति। तुम्हारे सन्देशों की प्रतीक्षा और यह एकाकीपन का माहौल·····तुम्हारे सन्देश भी बने हैं असाढ़ के बादल।

ग्रीष्म की भीषणता से अपने सुकुमार पत्र-पुष्पों की शोभा जैसे कोई विरला तरु बचा लेता है वैसे ही तुम्हारी याद की हरियाली मेरी आँखों में बची हुई है। पर कब तक·····बेचारा अकेला तरु जैसे बादल से मूक निवेदन करता है वैसे ही मैं भी तुम्हारे सन्देश-नीरद को प्रतीक्षाकुल हो पुकार उठता हूँ। पर कौन सुनता है पुकार अकेलों की·····। नहीं, ऐसा नहीं, तुम्हारी स्मृति की हरियाली अपनी मुस्कान से बेचैन मन को राहत देती है। काश ! असाढ़ के बादल बरसते उस तरु पर और तुम्हारे सन्देश के मेघ मुझ पर स्नेह बरसाते।

१६-६-७१

⊙

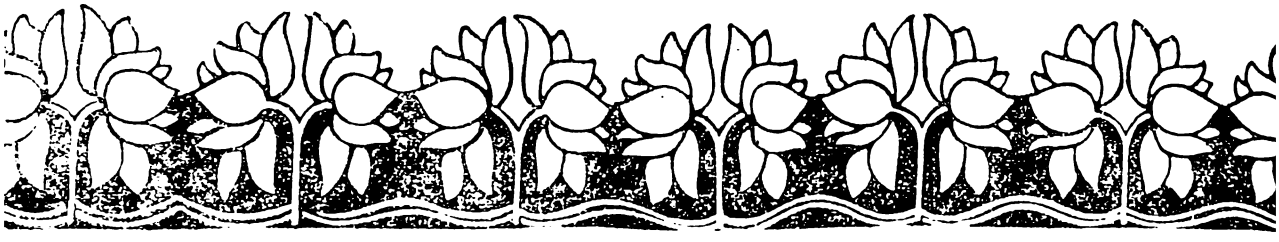

प्रियवर ! बेला

॥ तेइस ॥

प्रियवर !

बेला-पुष्पों का यह भावमय सौन्दर्य, यह आकाश-गंगा के रसकनों में स्नात श्वेत रंग देखते ही तुम्हारा स्मरण हो आया। इन फूलों ने रंग और भावुकता जैसे तुमसे माँग कर ली हो। मैं निहारता हूँ इनकी सुकुमार पाँखें और ये अपनी मधुर गन्ध पवन के हाथ चुपके से मेरी ओर भेज रहे हैं।

प्रियतम ! यहीं रुक कर इन्हें निरन्तर देखने की चाह बढ़ती जा रही है। ओह ! स्वर्ग-मन्दाकिनी के जल-कन से भींगा इनका रूप मेरी आँखों में वैसे ही भर रहा है जैसे स्नेह में सिक्त तुम्हारा रूप। इनकी मीठी सुरभि वैसे ही प्यारी लग रही है जैसे तुम्हारी सन्देश-पाती। तुम्हारे सन्देशों की भाँति मेरी उत्सुकता को इस महक ने व्याकुल कर रखा है। मैं इन पुष्पों में तुम्हें कहाँ पाऊँगा, पर ये अपने रंग की भावुकता और गन्ध की मधुरिमा से तुम्हारी याद को मेरे हृदय में बराबर जगाये रह रहे हैं।

२०-६-७१

⊙

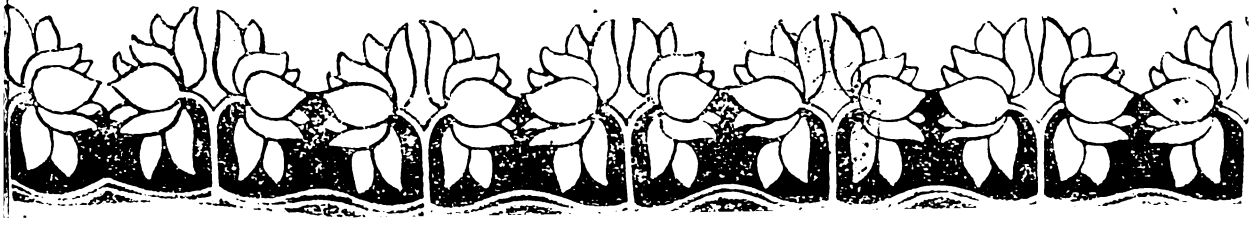

असाढ़ के मेघ

॥ चौबीस ॥

असाढ़ के मेघ सहसा नहीं आते · · · · · · · · · आते भी हैं तो एक झलक दिखाकर तत्काल क्षितिज की गोद में मुँह छिपाकर विलुप्त हो जाते हैं जैसे शिशु किसी अपरिचित की आहट पा उससे बचने के लिए माँ की गोद में सिमट कर उसके आँचल में छिप जाता है। असाढ़ इनका शैशवकाल है और आर्द्रा नक्षत्र इन शिशुओं के घुटने के बल सरकने का समय। बच्चों सदृश इन शिशु-मेघों की चपल-सरल एवं मोहक क्रीड़ा कितनी प्यारी लगती है। ये कितने भोले हैं। आर्द्रा नक्षत्र में ये बड़ी निरीहता से आसमान में घिरकर बरसने लगते हैं मानों बच्चों के चेहरे से हँसी, निर्विकार हँसी झर रही है। बच्चों की किलकारी सदृश इनकी चमक बड़ी प्यारी होती है। कालिदास के लाड़ले ये शिशु-मेघ गजशावकों-से मासूम एवं प्रिय लगते हैं।

२२-६-७१

⊙

हृदयेश !

॥ पच्चीस ॥

हृदयेश !

इस मधु-सी मधुर रजनी में आर्द्रा नक्षत्र के मासूम मेघों की बरसात-सी तुम्हारी याद मेरे मानस की धरती को गीला कर रही है। मालती-लता के सुमन मौन एवं बेला की कलियाँ उदास ठण्डी आह के साथ लम्बी साँस छोड़ रही हैं। दोनों की साँसों का संगम पवन के हृदय-देश में होता है। बेला और मालती की मीठी महक से गम्भीर हुआ पवन मन्द गति से चल कर सारे माहौल पर छा रहा है।

रूप-रस के प्यासे मेरे इन नयनों के द्वारे तुम आकर खड़े हो जैसे और मैं प्यास बुझाने के लिए तुम्हें छूने के लिए जब हाथ बढ़ाता हूँ, तुम दूर और दूर जाते-से प्रतीत होते हो मृगजल की भाँति। ओह ! भूल हुई मेरे सर्वस्व ! तुम मृगजल नहीं·····अभी तो मैं तुम्हारी याद के नेह-जल में भींग रहा हूँ और जब सचमुच तुम मेरे निकट होंगे मैं तुम्हारे स्नेह-पीयूष में डूबकर तुमसे एकाकार हो जाऊँगा·····बिछुड़न की यह रात जाने तो दो।

२५-६-७१

⊙

निर्मम !

॥ छब्बीस ॥

निर्मम !

नयन फेरने ही थे तो मुझे झुकी नजरों से आमंत्रित क्यों किया ? मैं तो सहज भाव से यों ही खड़ा था कि तुमने अपनी झुकी पलकें एक बार उठाईं और तब क्या हुआ ? उन पलों की मिठास आज भी मुझे स्वाद दे रही है। मेरी स्मृति-डगर के किनारे स्थित तरुओं सदृश वे मादक पल अमरता पा गये हैं। लाज भरे दो नयन पलकों का आवरण तनिक ऊपर कर उठे और मेरे इन नयनों को निहाल करने लगे। मैं तो कुछ न पा सका पर तुम्हारी आँखों का जादू मुझ पर ऐसा छा गया कि मैं सदा के लिए तुम्हारी उस अदा का उपासक बन गया।

प्रिय ! मैं अनुभव करता हूँ कि तुम्हारी शरमदार भोली आँखों ने मेरी आँखों में झाँक कर मेरा हृदय भी देख लिया और देखते-देखते हृदय में—ऐसी समा गयीं कि तुम्हारी आँखें मेरी आँखों की अभीष्ट बन गयीं।

पर आज यह परिवर्तन · · · · · · · ? यह निठुराई ? मुझे दर्द दे रही है। अतः प्यारे, नजर उठाओ और चितवन-प्यालियों का आसव मेरी आँखों में ढाल दो। बेचैन दिल को चैन मिलेगा और तुम्हारी मादक चितवन का चिर-प्रेमी मैं झूम-झूम उठूँगा।

२७-६-७१

⊙

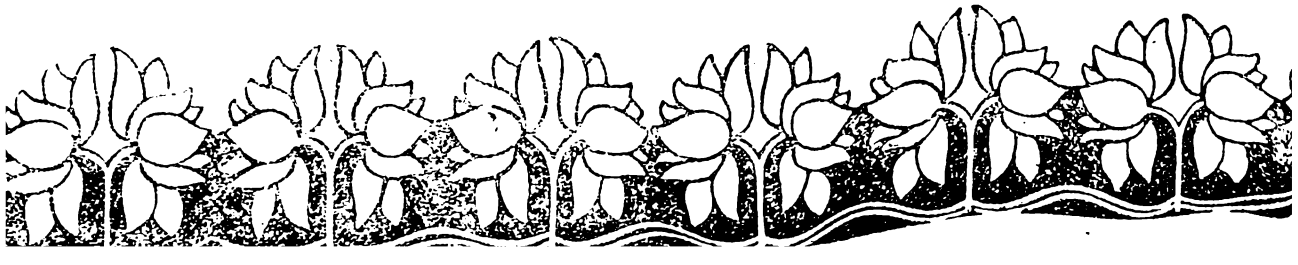

यह काली रात

॥ सत्ताइस ॥

यह काली रात—यह मेघाच्छन्न आकाश और असाढ़ के अंतिम सप्ताह के किशोर-मेघों की स्नेह-क्रीड़ा—झूमते गजशावकों-से ये कितने भोले एवं प्यारे लगते हैं। इस बरसाती मौसम के माहौल में जाग रहा हूँ मैं और यह मालती-लता·······लाल-सफेद फूलों के आभूषणों से सजी, पावस की फुहार में नहाती हुई। ओह ! कितनी उल्लसित है·········यश और अनुराग के रंगों में रँगा धानी चूनर सदृश पल्लवों के वस्त्र में आवेष्टित यह लता बिल्कुल उस नायिका-सी जो धानी साड़ी से अपने को आच्छादित किये हो और उसके आभूषण साडी के बाहर झाँक रहे हों और जो शबनम की बूंदों में भींगी हो।

इस सौन्दर्य में एक आकर्षण है—मैं इसे निहार रहा हूँ अपलक पर आँखें उदास हो-होकर झुक जाती हैं। क्या करूँ ? तनहाई में नयनों का पानी अच्छा साथी होता है। तुम्हारी याद की बदली को ठेस लग गयी और नयन-रस की फुहार कपोलों को गीला करने लगी है·······मेघ की फुहार धरती को गीला कर रही है और लता फूल की आँखों से रो-रोकर अपनी धानी चूनर भिंगो रही है। सारा वातावरण ही रो रहा है। मुझे लगता है सभी को वियोग की पीड़ा रुला रही है।

३०-६-७१

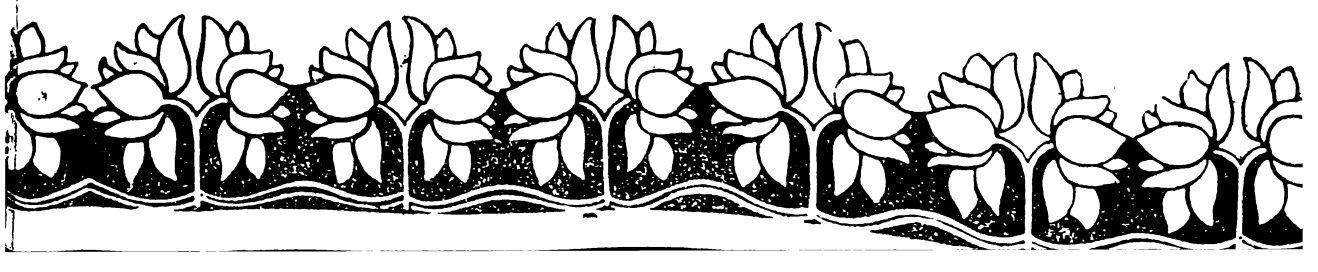

⊙

मध्यनिशा

॥ अट्ठाइस ॥

मध्य-निशा की वेला में उदास जिन्दगी के अनमिल स्वर कानों से टकराकर अपनी अप्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। इस अकेलेपन के दर्द को भूलने के लिए कुछ पलों के लिए तुम्हारी तस्वीर अपनी पलकों में प्रतिष्ठित कर तुम्हारे संग की मधुर स्मृतियों में डूब जाना चाहता हूँ। प्रथम दर्शन·····रेशमी धागे से भी नरम वाणी जिसने मुझे विवश किया निहारने के लिए·····और जब आँखें उठीं·····आज भी वह दृश्य जैसे मैं देख रहा हूँ·····तुम सहज निहार रहे थे मेरी ओर। तभी तुम्हारी आँखों में भरा सहजता का दूध मेरे नयनों के जल से एकरस हो गया।

आह! दूध और पानी के संगम-सा यह दृष्टि-मिलन बेमिसाल जिसकी स्मृति मुझे इस समय डुबो रही है। दृष्टियों का मधुर-मूक संलाप·····बतरस से कई गुना मधुर। ·····तबीयत न तब अघायी थी और न उन पलों की याद से आज ही अघा रही है। ओह! उन मधुमय पलों की स्मृति····· पलकों में वही तुम्हारा अल्हड़ रूप और यह उदास रात और यह मनहूस अकेलापन·····अजब वैषम्य का संगम है।

२-७-७१

⊙

तुलसी

॥ उन्तीस ॥

तुलसी·····जंगल में उगी घास जिसकी कोमल पत्तियाँ और मञ्जरियाँ देव-प्रतिमा पर चढ़े शृंगार-सुमनों के बीच सुशोभित मोहक शोभा-सी हैं। निरीहता-सी सरल इसकी पवित्रता से मेरा हृदय धुल जाता है।

तुलसी·····आँगन में एक ओर माटी के सुघर चौरे में हँसता एक मासूम बिरवा जिसकी हर पत्ती कामिनी की सौभाग्य-कामना का रसघट है। हर साँझ सौभागिनी घृत-दीप जला इसका पूजन करती है और दीये के आलोक में अपने जीवन-आलोक के लिए वह श्रद्धामयी हाथ जोड़ती है, प्रार्थना करती है। इसकी मञ्जरियों से झरते स्नेह-सी तरल श्रद्धा की बूंदों से मेरा हृदय भींग जाता है।

तुलसी·····श्रद्धामयी मानवी की आस्थाओं का बिरवा जिससे वह अपने सुहाग की अमरता की याचना करती है।

तुलसी·····एक देवी, विष्णुप्रिया, जिसे प्रेयसी का चहेता नायक अपनी भावनाएँ अञ्जलि में सँजोकर समर्पित कर देता है और तब यह नायक की भावनाओं और उसकी प्रिया की कामनाओं का संगम-स्थल बन जाती है,·····गंगा-जमुना के संगम-स्थल-सी पावन।

२९-७-७१

⊙

यह सूनी-उदास

॥ तीस ॥

यह सूनी-उदास जिन्दगी और शिथिल स्नेह-बन्धन ..... विचित्र संयोग है। कल्पना रह-रहकर एकाएक सिहर उठती है जब स्नेह-नीड़ की खूबसूरती पर कालेपन का एहसास होने लगता है। मुझे महसूस हो रहा है कि स्नेह-नीड़ शीघ्र ही नष्ट-नीड़ में परिवर्तित हो जाने को है। ओह स्नेह-पाँखी ! तेरी तड़पन, बेचैनी, अधीरता .....! सब स्वाभाविक है। यही सृष्टि का नियम है। अतः और उद्विग्न हो मेरे मन-पाँखी, ... पछतावे की जिन्दगी के ये संकेत न कभी उदार हुए हैं और न होने को हैं। अभी तो स्नेह-बन्धन की जकड़न थोड़ी ढीली हुई है, अभी तो जीवन को सूनापन थोड़ा-थोड़ा ही चुभता है, अभी तो उदासी की बेचैनी झलक-मात्र दिखाकर चली जाती है पर वह नाजुक समय दूर नहीं जब वह अपने कुलिश-कदमों से तेजी से आकर फूल-सी कोमल-सरस भावनाओं को रौंद देगी।

मेरे मन-पाँखी ! स्नेह-नीड़ के द्वार पर बैठ जिस स्नेही के लिए तू अधीर हो प्रतीक्षारत है उसकी आशा छोड़ दे ..... जिसके लिए तेरी आँखों की चंचल हँसी का स्थान गम्भीर अश्रुबिन्दु ले रहे हैं, उसके स्नेह-बन्धन में अब पुनः कसाव नहीं आयेगा, ... जिसके स्नेह में आकण्ठ डूबी जीवन-बाती बुझने की कल्पना ही नहीं करती थी उस स्नेह की धार तेरे जीवन-दीप से विमुख होने को है। अतः रो और रो, मेरे मन-पखेरू ! अधीरता को नयनों की राह बह जाने दे।

२०-८-७१

⊙

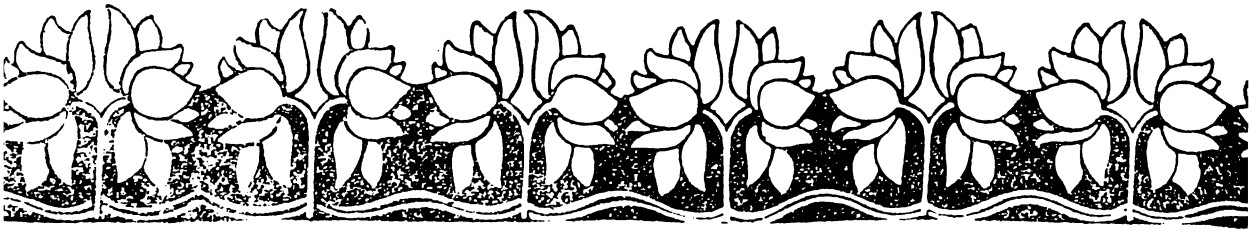

स्नेहमय ! कैसे

॥ इकतीस ॥

स्नेहमय !

कैसे बताऊँ कि तुम्हारा वियोग मुझे कितनी पीड़ा दे रहा है ? मधु-हास की आभा बिखेरती जिन्दगी को करुण उदासी की काली बदली ने घिरकर आच्छादित कर लिया है । तुम्हारे अभाव का धुआँ बार-बार मेरी आँखों को रुला देता है। घने कुहासे-सा सन्नाटा मेरे एकाकीपन को अपनी कालिमा से भर रहा है,·····और तुम····· तुम मुझसे इतनी दूर हो कि तुम्हारी याद ही मेरी तनहाई में पीड़ा देकर भी सम्बल बनी हुई है ।

आह प्रिय ! वियोग की पीड़ा में कितनी बेचैनी होती है, यह अनुभव करने की बात है । दूसरी ओर तनहाई वियोग बटोही के अच्छे पाथेय हैं । प्राण मेरे ! अब तो असह्य है तुम्हारी विछुड़न-व्यथा,·····तुम्हें देख न पाकर ढीठ तनहाई काटने दौड़ती है ।

अतः प्रिय ! जल्दी निकट आओ,·····तुम्हें देख नयन निहाल हो जायेंगे और मन में बसी तुम्हारी प्रतिमा और सौन्दर्यमयी हो मेरे मन को रागमय कर देगी। मधु-हास से जीवन का हर कोना निनादित हो उठेगा । आँखें प्रेमाश्रु से धुल जायेंगी और सन्नाटा रोयेगा, पछतायेगा अपनी नादानी पर । तब तुम कितने मधुर, कितने सुन्दर लगोगे । आह ! तुम आ जाते ।

१-९-७१

⊙

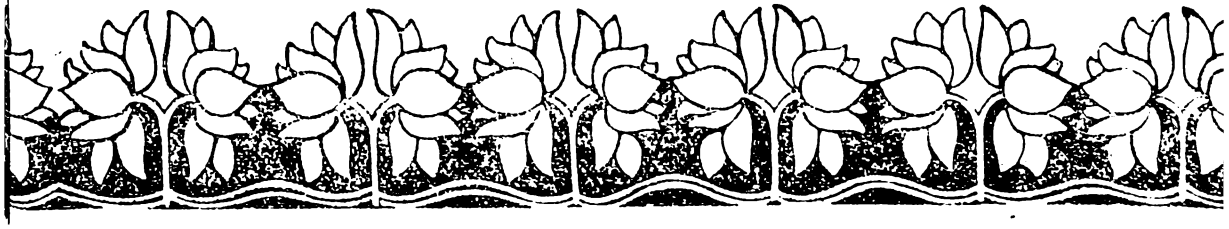

वर्षान्त के

॥ वत्तीस ॥

वर्षान्त के जलहीन मेघ-खण्डों की सफेदी विल्कुल वृद्धों के श्वेत-कुन्तल-सी। ये आसमान के तारों से लुका-छिपी का खेल खेलते हुए दौड़ रहे हैं जैसे बूढ़े बाबा बच्चों के साथ खेल कर उनका मन वहलाते हैं और अपना भी। ओह ! ये कभी-कभी रुक-रुक कर क्या सोचते हैं ? निश्चय ही इन्हें अपने शिशु एवं किशोर जीवन की यादें आ रही हैं मानो ये अपने असाढ़ के जीवन में पहुँच गये हैं। आज ये विल्कुल सफेद हो गये हैं पर असाढ़-सावन में ये काले थे। तब ये जवान थे, अव·····।

पूरव कोने में एक सजीले तरुण-सा हसीन चाँद रुपहली हँसी हँस रहा है। वह वाल-वृद्ध-क्रीड़ा को देख कर मगन हो रहा है।·····पर चाँद की जिन्दगी भी सबेरा देखेगी, जव इसके चेहरे का पानी धूमिल पड़ जायगा और यह ओस के आँसू वहाता विदा लेगा। हमारी जिन्दगी के दिन और पल ऐसे ही भाग रहे हैं। एक दिन हमें भी वादलों की सफेदी मिलेगी और चाँद की सुवह जैसी सुवह।

६-९-७१

⊙

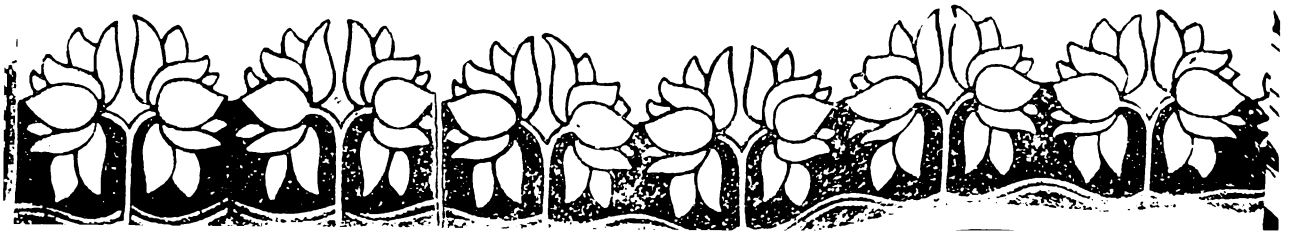

प्रियवर ! आसक्ति

॥ तैंतीस ॥

प्रियवर !

आसक्ति की मदिरा से भरपूर तेरे नयन-चषकों को निहार कर मेरा मन तृषाकुल होता जा रहा है। तेरी वाणी की मधुरता कैसे कहूँ—ओह ! लगता है साकी मधु-प्याला होंठ से लगा मुझ पीने के लिए मनुहार के बोल से मेरे कानों को निहाल कर रहा है। यह तेरी स्वर-लहरी का जादू है जिससे नयनों को पीने की साध हुई। ओह ! ढल रही है मदिरा और छक रही हैं मेरी आँखें। पर इनकी पिपासा·····? कैसे कहूँ कि पूरी होगी क्योंकि मेरी आँखें पी-पीकर भी अघाती नहीं।

आह प्रिय ! दूर न जाओ, ·····नहीं तो ये आँखें उदास हो जायेंगी और उद्विग्नता की आँच से इनका पानी निःशेष हो जायेगा। फिर क्या होगा मेरे मादक ? उन बेरहम घड़ियों की कल्पना·····कैसे करूँ ? कल्पना ही सिहर जाती है। उसकी कोई तस्वीर ही नहीं बन पा रही है। अतः प्यारे ! ढलने दो अपनी आँखों की मदिरा मेरी आँखों में। आसक्ति अमर हो जायेगी।

११-९-७१

⊙

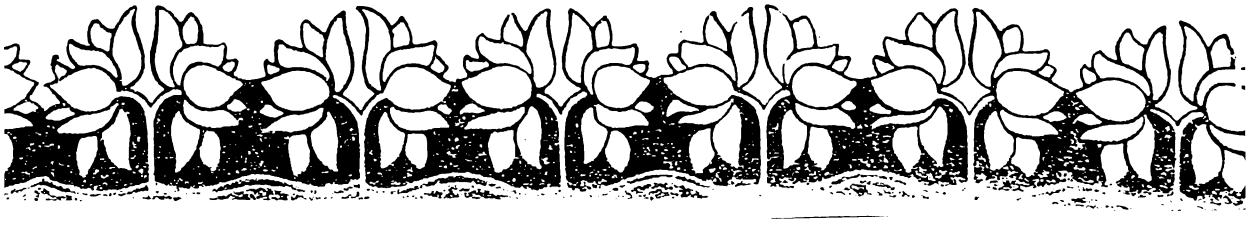

प्रिय ! मेरे

॥ चौंतीस ॥

प्रिय !

मेरे जीवन-सदन के द्वार पर तुम्हारी दस्तक पहले कभी न सुनी हुई मधुर संगीत-ध्वनि-सी आकर्षक एवं विमुग्धकारिणी । निहारते ही आकर्षण दुगुना हो गया । पावस-कालीन यौवनवती सरिता के बेरोक सैलाव-सा हृदय का आकर्षण बेचैन हो उठा । भावनाओं के फेन से फेनिल प्रेम-तरंगें होंठों के किनारे का स्पर्श कर मचलने लगीं और ज्योंही तुमने झुकी पलकें ऊपर उठाईं तुम्हारे मादक नयनों का मधु मुझे भिगोने लगा । ओह ! नयनों का संगम ..... तुम्हारे नेत्रों में भरी आकर्षण की मादक लहर मेरे नयनों में ढलकर आ रही है ।

अरे, होंठों पर फैले मौन का बाँध टूट ही गया और हृदय का सैलाव वाणी की धार बन जीवन के धरातल पर बहने लगा । मेरे जीवन का हर कोना तुम्हारे प्रेम-जल से भर उठा है । ओह ! तुम्हारे हाथों की थपथपाहट मेरी जिन्दगी को कितना सुख देती है ।

२०-९-७१

⊙

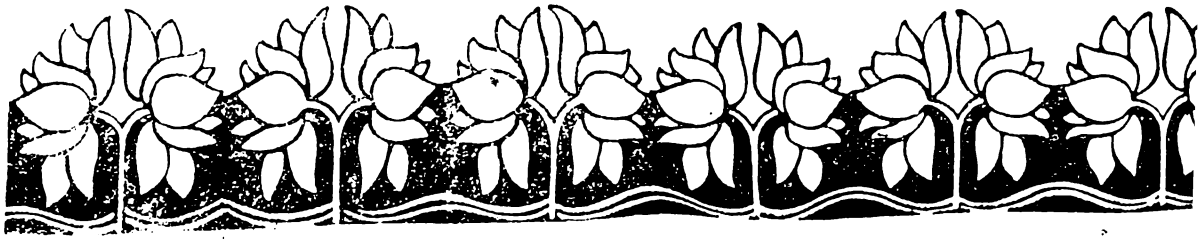

प्रिय ! यह

॥ पैंतीस ॥

प्रिय !

यह शरद्-काल ..... कितना आकर्षक ..... यह छितवन के फूलों का मौसम ..... । मैं देखता हूँ फूलों के अंकुरों से छितवन-तरु भर उठा है जैसे वसन्त में रसाल-तरु मञ्जरियों से भर उठता है । ..... और यह हरसिंगार ..... इसे तो शरद्-सुमन ही कहें । नित्य प्रत्यूष वेला में यह धरती का आँचल भर देता है अपनी धवलिमा से और शारदीय पवन इसकी गंध से बोझिल हो मन्दवाही हो जाता है । इसकी मधुर सुवास ..... ऐसी ही तो वसन्त में महुए के फूलों से धरती आच्छादित हो जाती है और वासन्ती पवन इसकी मादक गंध से बोझिल हो सम्पूर्ण प्रकृति को छूकर उसे मदिर बना देता है ।

..... और यह शारदीय चन्द्र ..... अपने सौन्दर्य से सम्पूर्ण धरा को उज्ज्वल किये हुए है, पर यह भी वियोगी है । रात भर रोता है यह और सम्पूर्ण प्रकृति इसके नयन-जल से भींगी मिलती है । मुझे भी इस मौसम में तुम्हारा अभाव खल रहा है । पर मैं चाँद नहीं, काश ! मेरे आँसू शबनम बन विरही चाँद के आँसू में मिल जाते और मेरी आह भरी निःश्वास महकते शारदीय पवन में मिल जाती ।

२७-९-७१

⊙

स्नेहमय ! तुम्हारे

॥ छत्तीस ॥

स्नेहमय !

तुम्हारे अनुराग के रंग में रँगी जिन्दगी कितनी हसीन लगने लगी है । जबसे तुमने अपने अनुराग का चन्दन मेरे ललाट पर अपनी भावमयी अँगुलियों से लगाया है, सच मानो अनुराग-चन्दन की महक में मिली तुम्हारे कोमल स्पर्श की मधुगन्ध से मैं बेचैन हो उठा हूँ । तब निहारता हूँ तुम्हारी ओर और तभी तुम्हारी झुकी पलकें उठती हैं धीरे-धीरे ····· तुम्हारी आँखों का तरल स्नेह विश्वास बनकर मेरी आँखों में समाने लगा है।

तुम्हारे विश्वास का यह अंकुर मेरे हृदय की धरती में जियेगा, प्रिय ! मैं इसे अपने हृदय के राग-रस से सदैव सींचता रहूँगा । मेरे प्यारे ! वह पल भी कितना हसीन और कितना उल्लास-भरा होगा जब हम दोनों के अनुराग का विश्वास-तरु लहलहाकर मधु-कणों की वर्षा करेगा और उसमें भींग कर जिन्दगी और भी हसीन लगेगी ।

५-१२-७१

⊙

स्नेहमय ! तुम्हारे प्यार

॥ सैंतीस ॥

स्नेहमय !

तुम्हारे प्यार की मधुगन्ध मेरी साँसों में भर उठी जैसे हेमन्ती शर्वरी की हर साँस में रजनीगन्धा की मदिर वास। मेरी जिन्दगी का यह मधुर मौसम कितना सुहावना लगने लगा है।

तुम्हारे अनुराग का मृदु स्पर्श मेरी रोमावलियों में एक सिहरन-सी भर गया जैसे जवानी को छू दे कोई प्रेम-प्रतिमा। मेरी जिन्दगी का भींगा माहौल कितना हसीन हो गया है।

तुम्हारे मदिर हास का नशीला आकर्षण मेरे अतःकरण पर छा गया और मैं झूम उठा जैसे भ्रमरों पर छा जाये फूलों का पराग और वे गुञ्जित हो उठें।

तुम्हारे विश्वास का संगीत मेरे हृदय के साज को झंकृत कर गया और मैं तन्मय हो निहारता रहा तुम्हें जैसे वीणा की स्वर-लहरी की मधुरिमा हो और हिरन उसकी मादकता में डूब-डूब जाये।

ओह प्रिय ! तुम्हीं मेरे प्यार हो, अनुराग हो और हो मदिर हास एवं विश्वास और मैं तुम्हारा हूँ बिल्कुल तुम्हारा।

६-१२-७१

⊙

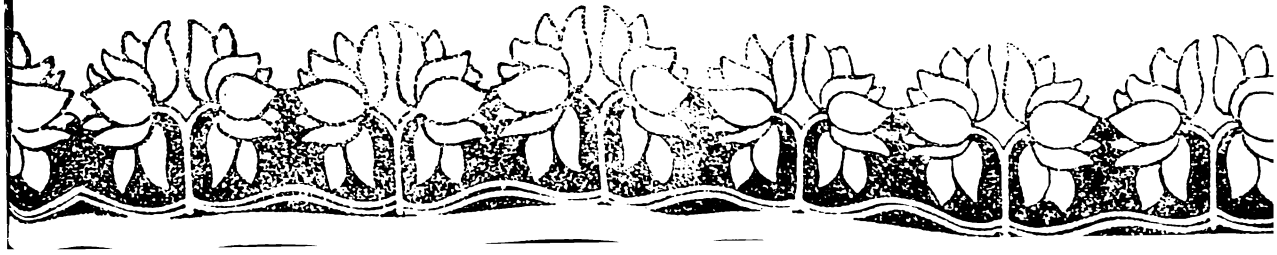

नेह प्रतिमा !

॥ अड़तीस ॥

नेह प्रतिमा !

हाँ, मेरे मानस से तुम्हारा यही रूप उभरता है और मेरी वाणी को यही सम्बोधन भाता है। तुम्हारे नेह की सच्चाई · · · · · · ओह ! जिसे तुमने जुबान का स्पर्श नहीं दिया, · · · · · · · फूलों के पराग सदृश तुम्हारे मुखड़े की मुस्कान से झाँक कर बार-बार मेरे हृदय को छू लेती है। मैं इस स्नेह-स्पर्श से विभोर हो उठा हूँ।

सच मानो, तुम्हारी अनुराग-कामना की पावन-गंगा कितनी दूर से चली आयी, यह जब मैं निहारता हूँ तो मेरा हृदय अनुराग-नीर में नहाकर धन्य हो जाने को उत्सुक हो तुम्हारी ओर बढ़ जाता है। मैं इस अनुराग-नीर में सराबोर हो जाता हूँ।

शशि की कौमुदी-सी शीतल एवं उषा की अरुणिमा-सी कोमल तुम्हारी रजत-स्वर्णिम-नेह-प्रतिमा मुझे मुग्ध कर रही है। तुम्हारे इस रूप की प्राण-प्रतिष्ठा मैं अपने प्राण में कर निहाल हो जाऊँगा। बस ऐसे ही मेरे मानस के अनुराग-नीर को अपनी रूप-सरि के स्नेह-नीर में मिल जाने दो।

७-१२-७१

⊙

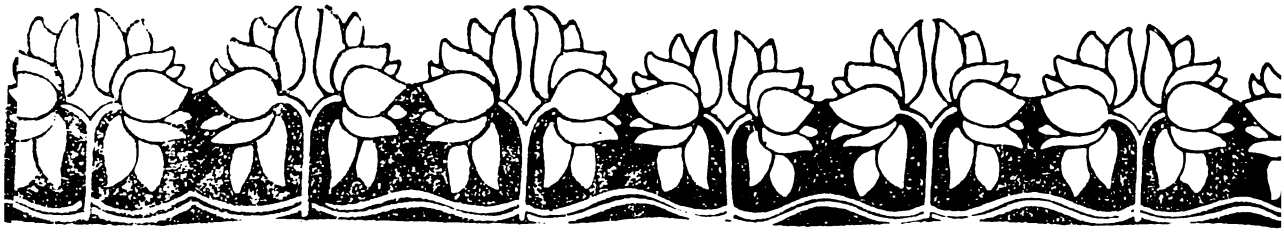

प्रिय ! अनुराग

॥ उन्तालीस ॥

प्रिय !

अनुराग-पथ बड़ा ही चिकना किन्तु ईर्ष्या के काँटों से भरा होता है। पर क्या फिसलने और चुभने के भय से प्रीति-डगर के राही चलना बन्द कर देते हैं? देखो,..... गुलाब का फूल..... कितना मासूम रूप, कितना हसीन रंग और कितनी भीनी सुगन्ध, इस अनुराग-पुष्प का रूप निहार आँखें सुखी हो जाती हैं और इसकी मधु गन्ध से हृदय का स्नेह महक उठता है। पर इसके चारों ओर ऐसे काँटों की भीर है जो इसका हृदय बेधने की ताक में सदा रहते हैं..... तो क्या पाटल सुमन कभी काँटों की परवाह करता है? शायद कभी नहीं और न मधुप ही कभी काँटों से दण्डित होने का भय महसूस करता है।

प्रीति-वीथी में विचरने वाले हर प्रेमी को ईर्ष्या-द्वेष के काँटे-कंकड़ों पर से गुजरना होता है। अतः प्रिय मेरे ! आओ, निश्चिन्त एवं निर्भय हो अपनी यात्रा पर निकलें। ईर्ष्या-द्वेष के काँटे-कंकड़ धूल में घुलमिल जायेंगे और हम दोनों की प्रीति हम दोनों सदृश एक-दूसरे को गले लगा लेगी।

९-१२-७१

⊙

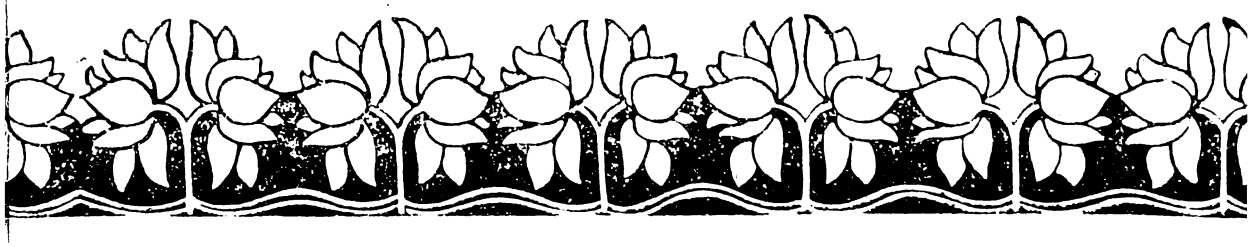

मेरे अनुराग-संबल !

॥ चालीस ॥

मेरे अनुराग-सम्बल !

मैं जब पीछे मुड़कर कल को देखता हूँ तो मुझे उस मूक माहौल का प्रलोभन आज भी दर्द देता है ; मैं अपनी धुन में बहता चला गया,·····ओह ! तब मैं तुम्हारे अनुराग की मौन वाणी क्यों न समझ सका ? मेरी ये गीली आँखें पछता रही हैं। पर मुझ इन पर रोष आ रहा है।

ओह, वे दिन !·····

जब तुम शिशु हिरन-सी मासूम आँखें कभी-कभी मेरी ओर उठाकर अपना मूक अभिनन्दन मुझे समर्पित करते थे और सहसा मेरी आँखों का स्नेह उस पर बरस जाता।

जब अपने कटीले अपांगों से मेरा हृदय अपहृत करने का प्रयास बहुत छिपकर करते और सहसा नजरों के संगम पर प्रणय की बाँसुरी मादक-मधुर ध्वनि में बजने लगती।

जब मेरी समीपता न पाकर भी दूरी को समीपता में बदलने के लिए गुलाबी कपोलों की मुस्कान से अपना प्रणय-सन्देश प्रेरित करते थे और तभी मुस्कानों का मधुर मिलन सहसा हो जाता।

·····पर तब मैं लापरवाह था। और आज·····तुम्हारे स्वरित अभिनन्दन का गीत सुनाता हूँ वीन की मधु झंकार सदृश।

तुम्हारी वाणी को नयन मिल गये हैं जैसे। अब बातों का रस है जिससे जीवन सरस हो चला है।

तुम मेरी समीपता पर हर्षित हो,·····कपोलों की मुस्कान से अधरों की हँसी का जन्म हो गया है और मैं तुम्हारी समीपता की दूरी से बेचैन हो उठा हूँ और तब कल को पाने के लिए पछताता हूँ।

११-१२-७१

⊙

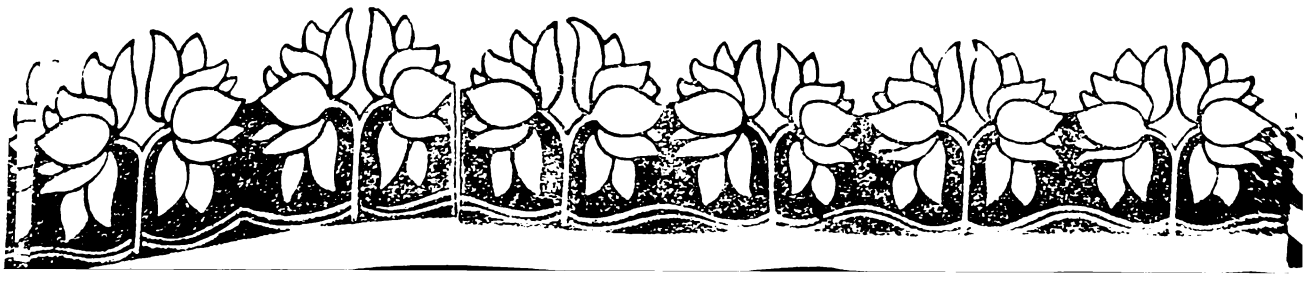

मेरे स्नेह-प्राण !

॥ इकतालीस ॥

मेरे स्नेह-प्राण !

जब से तुम मेरे समीप हो मेरी जिन्दगी को पीयूष सरिस तुम्हारा स्नेह अमरता प्रदान कर रहा है। दृष्टि का एक स्पर्श देता हूँ अपने इस जीवन को····· तो पाता हूँ कि मेरा यह जीवन तो निरा ठूंठ था, जिसकी अपनी आस्था की पत्तियाँ सूख कर झड़ चुकी थीं। स्नेह की जिन्दगी अब सूखी और अब सूखी की स्थिति में थी, तभी तुमने अपने स्नेह के अमृत से मेरी ठूंठ-सी जिन्दगी में जीवन भर दिया।

सच मानो, मेरे प्राण ! यह तुम्हारा मधुर स्नेह ही है जिससे जिन्दगी की मेरी आस्थाएँ जीवन पा रही हैं। तुम्हारे स्नेह-रस की मधु-वर्षा चाँद की चाँदनी-सी भिगोने लगी मेरी जिन्दगी की धरती और तभी स्नेह-विश्वास के कोमल अंकुर मुस्कराने लगे थे। मेरा स्नेह जीवन पा गया था और मैं नहा उठा था तुम्हारे स्नेह में।

१३-१२-७१

⊙

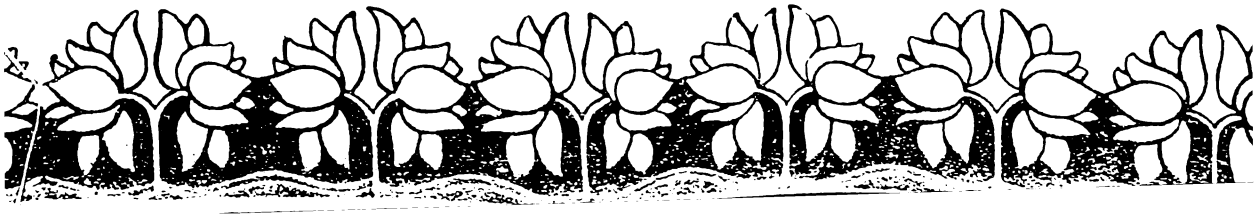

मेरे स्नेह प्रतीक !

।। बयालीस ।।

मेरे स्नेह-प्रतीक !

हेमन्त के इस मौसम में घने कुहासे से भरी इस रात के सदृश विषाद का कुहासा मेरे अन्तस्तल में भर उठा । मध्य निशा के सन्नाटे सदृश जिन्दगी सूनी-सी प्रतीत होने लगी है। दुःख का यह बोझ अब कैसे सम्हाला जाय, तुम्हीं बताओ, मेरे प्यार की सीमा ! वर्षों की हम दोनों की स्नेह-साधना ने प्रेम का यह बिरवा विकसित किया है। पर क्या इसका तुम्हें तनिक भी ध्यान न रहा जो तुम बढ़ते चले गये वासना के बबूल की ओर।

देख रहे हो मेरे हृदय का रक्त·····यह बबूल के काँटों से छिद गया है । नवनीत-सा ऋजु हम दोनों का यह स्नेह·····इसके जीवन के लिए मैं चिन्तित हो उठा हूँ । प्रिय ! हृदय आर्द्र हो उठा है, नयन भींग गये हैं यह देख कर कि मेरे स्नेह-प्रतीक को किसी की वासना के बाहुपाश बाँध रहे हैं । पर ऐसा नहीं होगा·····मेरे अपने, तुम्हें मैं सदैव अपने स्नेह के बाहुपाश में रखूंगा, अपने से दूर नहीं होने दूंगा ।

१५-१२-७१

⊙

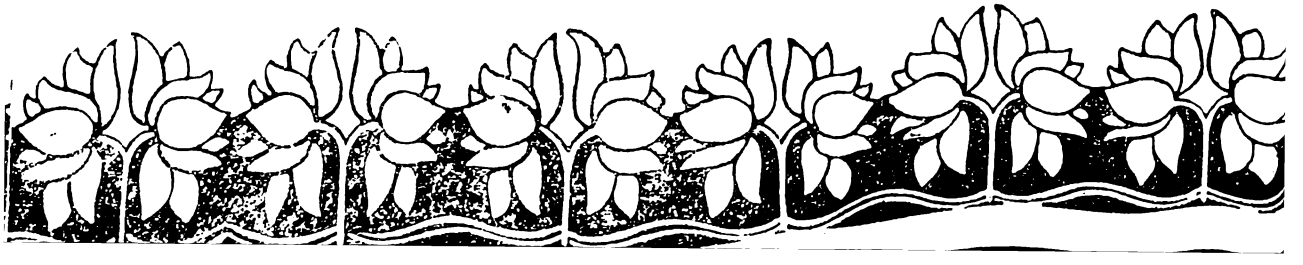

मेरे मयंक !

।। तैंतालीस ।।

मेरे मयंक !

मैं देख रहा हूँ आसमान की नीलिमा में उभरे उस पीयूषवर्षी को और अपने सामने जीवन की नीलिमा पर रूप की अभिय-धारा बहाते तुझको। उसकी कौमुदी····· दुग्ध-स्नात कौमुदी···· धरती पर बरस कर उसके हृदय को रसमय कर रही है और इधर तेरी मुस्कान से मेरा हृदय रसमग्न हो उठा। मूक चन्द्र का मौन सौन्दर्य धरती की जिन्दगी का सन्नाटा नहीं दूर कर सकता, पर मेरे चाँद ! तेरा सौन्दर्य तो अब वाचाल हुआ की स्थिति में सदा ही रहता है और जब तू अपनी झुकी पलकों का अवगुण्ठन हटा मासूम चितवन का स्नेह-अभिनन्दन मुझे देता है तो मैं विभोर हो जाता हूँ। तभी मेरे कानों में तेरी वाणी-वीणा का मधुर संगीत रस उँड़ेलने लगती है।

मेरे शशि ! तेरे मन्द मधुर संलापों के गीत मेरे हृदय का शृंगार करने लगते हैं फूलों के अलंकार सदृश और तब उस अबोले शशि को देखता हूँ जो नीरव शबनम के आँसू से धरती का हृदय भिगोता विदा लेता है और तू अपनी मुस्कान की शबनम से मेरी हृदय-कलिका को विकसित कर मुझे निहाल कर देता है।

१७-१२-७१

⊙

स्नेहमय ! तनहाई

॥ चौवालीस ॥

स्नेहमय !

तनहाई के पलों में तुम्हारी याद की बदली मेरे हृदय-देश पर छा जाती है और मेरी हृदय-धरती पर पनपे साधों के विरवे आँखें खोल कर निहारने लगते हैं और तभी स्मृति-मेघ स्नेह के रसकनों की वर्षा कर देते हैं। तब हृदय कितना आर्द्र हो उठता है और लगता है जैसे मन का पपीहा साधों के हृदय-वन में तुम्हें पुकार रहा है।

प्रिय ! जिन्दगी के इस सन्नाटे मौसम में जब तुम्हारी परछाईं तक के लिए कभी आँखें अधीर हो उठती हैं और बच्चों की तरह रोते-रोते थककर सो जाती हैं तो सपनों का एक रंगीन मौसम जीवन के माहौल पर छाने लगता है। मान-मनुहार, मधुर संलाप—स्पर्शों की मधुवेला आकर जीवन को निहाल करने लगती है। पर पल-दो-पल का यह स्वप्न-सुख एक झटके में विनष्ट हो जाता है और फिर स्वाती के जल-कन सदृश अलभ्य तुम्हारे दीदार के लिए मेरा मन-पपीहरा जिन्दगी को सावन बना देता है।

१६-१२-७१

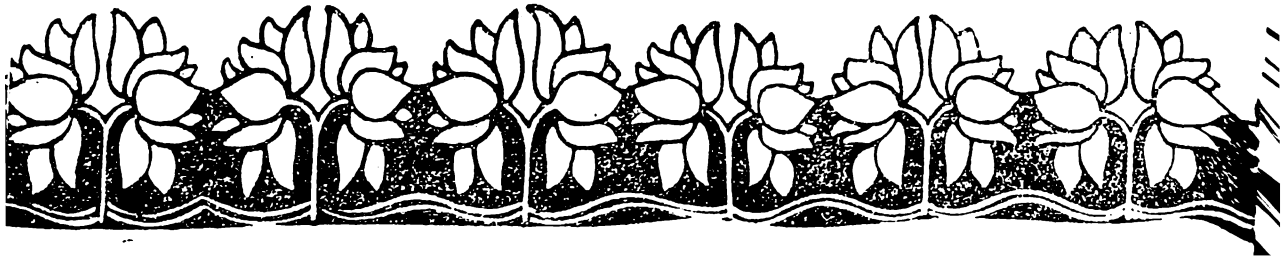

प्रिय ! चाँद की

॥ पैंतालीस ॥

प्रिय !

चाँद की हँसती कौमुदी-सी तुम्हारी ठण्डी मुस्कान मेरे मानस को मधुमय बना देती है। स्मित-वर्षा की इस मधुवेला में मानस में साधों के कुमुद-मुकुल खिलने लगते हैं। कुहक-मंजूषा-सी यह तुम्हारी मादक मुस्कान मन को बेचैन कर देती है। आह प्रिय ! मैं विस्मित हूँ, विभोर हूँ। झुकी पलकों का घूंघट हटाकर जब तुम्हारी चितवन मुस्कान की मधुरिमा से मेरा अभिनन्दन करती है तो सच कहता हूँ मेरी कुँवारी साधों की साधें पूरी होने लगती हैं और तभी मुझे अपनी कामनाओं की जिन्दगी से प्यार होने लगता है।

तुम्हारे आनन-सरोज से झरते मुस्कान मधुनीर की माधुरी को पान कर भी मैं अतृप्त ही हूँ। अनुराग की चिर पिपासा से व्यथित मेरी जिन्दगी इसी माधुरी से अपनी प्यास को शान्त करने में तल्लीन हो जाती है। मेरे चाँद ! ऐसे ही अपनी मुस्कान की माधुरी से मुझे जीवन देते रहो। तुम्हारे मुस्कान-सौन्दर्य की चाँदनी में मैं सदैव मधुस्नान करता रहूँ और तुम अपने प्यार के शबनम में मुझे सजाते रहो।

२०-१२-७१

⊙

अनुरागी मेरे !

॥ छियालीस ॥

अनुरागी मेरे !

हेमन्त की गदरायी रात,·····प्रकृति शबनम की तरलता में भींग रही है, ऐसे ही तुम्हारे अनुराग की तरलता मुझे नहला देती है और तब मैं विभोर हो जाता हूँ। हेमन्ती हवा का तीर मुझे छूकर मेरे हृदय में सिहरन की लहरें भर देता है,····· प्यारे ! तुम्हारी शीतल चितवन के तीर भी तो ऐसे ही मेरे हृदय को अपनी सिहरन की मादक लहरों से भर देते हैं। दोनों के तीर हृदय में सिहरन की लहरें उत्पन्न करते हैं पर एक अन्तर है·····हेमन्ती समीरण के तीर अपनी चोट से भय को और तुम्हारी शीतल चितवन के तीर अपने स्पर्श से प्यार की अनेक तरंगों को जन्म देते हैं।

प्रिय मेरे ! मैं चाहता हूँ तुम्हारी चितवन का विलास मुझे अपनी मादक सिहरनों से सदैव भरता रहे और तुम्हारा प्यार सिहरन की उन तरंगों में घुलमिलकर मेरे हृदय को सदैव आर्द्र बनाये रहे। मेरा जीवन तुम्हारे अनुराग के अमिय-रस में सना रहे और मेरे स्नेह-सुमनों का हार तुम्हारे हृदय का स्पर्श करता रहे। फिर हेमन्ती रात मधु बरसायेगी और उसके शबनम प्यार के मोती बन कर हम दोनों के हृदय का शृंगार करेंगे।

२२-१२-७१

⊙

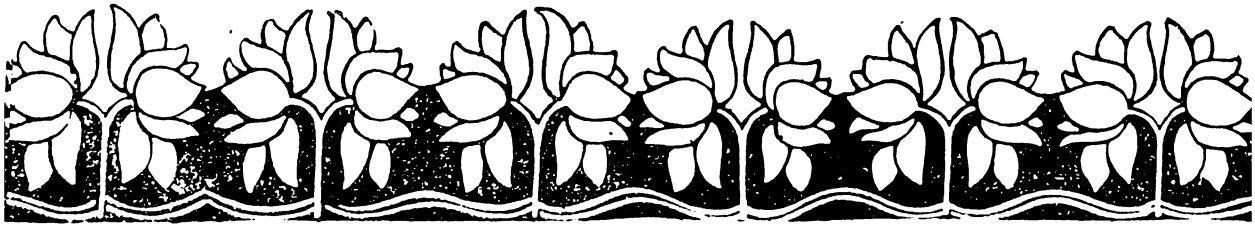

प्रिय ! जीवन

।। सैंतालीस ।।

प्रिय !

जीवन के सूनेपन का यह उदास मौसम वैसे ही सूखा-सूखा लग रहा है जैसे शिशिर की निर्मम हवा प्रकृति को नीरस कर देती है। शुष्क प्रकृति को निरीह खड़ी देख कर मन सिहर उठता है। ऐसे बदरंग मौसम में रंगीनी तब दीखती है जब अवगुण्ठन सदृश शिशिर-तिमिर को प्रभाकर की मासूम रश्मियाँ धीरे से हटा देती हैं और किरणों की मुस्कान से माहौल मुस्कराने लगता है। प्रिय मेरे ! तभी तुम्हारी स्मृति का अनुराग रस के छींटे सदृश मेरी रूखी जिन्दगी को भिगो देता है।

आह प्रिय ! इन बेदर्द पलों में तुम्हारी स्मृति का स्नेह तुम्हारे स्नेह की स्मृति बन हृदय में एक अनोखा माहौल उपस्थित कर देता है। तुमसे मिल पाने की उत्सुकता हृदय को आन्दोलित करने लगती है और तब हृदयस्थ तमन्नाओं का समुन्दर ऊँचे-ऊँचे शिखर बना तुम्हें पाने की कोशिश करता है मेरे चाँद !

२७-१२-७१

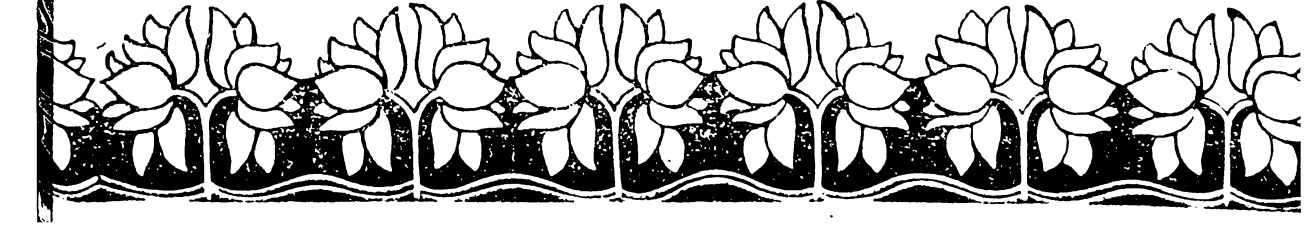

प्रियवर ! यह सूना

।। अड़तालीस ।।

प्रियवर !

यह सूना-उदास मौसम और यह एकाकीपन । प्रतीत होता है दोनों के विषाद का संगम-स्थल मैं ही हूँ । तुम्हारे अनुराग की स्मृति में डूबा मेरा हृदय तनहाई के विषाद में कभी-कभी तड़पने लगता है और तब तुम्हारी यादों की नेह-सरि मुझे एक स्पर्श दे जाती है । पर मेरे स्नेहमय ! विषादों की जिन्दगी बड़ी लम्बी प्रतीत हो रही है और केवल तुम्हारे प्रणय के सहारे ही मैंने एकाकीपने की चुनौती स्वीकार की है ।

प्रिय ! तुम्हारे अनुराग का नीर मेरे इस अकेलेपन को भिगोता रहे और उदास मौसम में तुम्हारी याद आ-आकर मुझे सजग कर मेरी प्रेम की दुनिया आबाद रखे, यह मेरी कामना है मेरे अपने !

२९-१२-७१

⊙

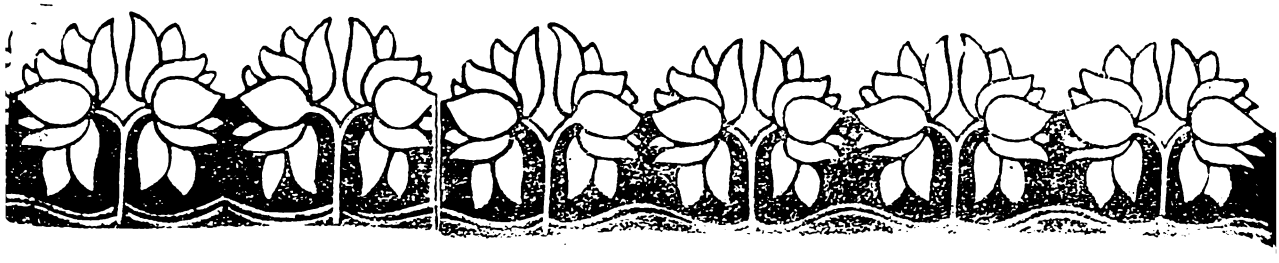

क्रूर-हृदय !

॥ उनचास ॥

क्रूर-हृदय !

तेरे चेहरे पर छाई मुस्कान बड़ी मादक है। एक विचित्र कुहक-सी यह मुस्कान मेरे हृदय को अपनी मादकता में डुबोती चली जा रही है। मैं मुस्कान की मादकता में बेसुध तेरी ओर बढ़ रहा हूँ पर तेरा स्पर्श उस दूर के संगीत-सा और दूर होता जा रहा है जिसके मोह में मासूम हिरन दौड़ते-दौड़ते निराश हो बेचैन गिरकर तड़पने लगता है। फिर भी बीन का स्वर बड़ा मादक होता है और हिरन अपनी जान देने पर तत्पर हो उसकी निकटता पाने की भरपूर चेष्टा करता है, पर अन्त में निराशा ही हाथ लगती है। मैं भी तेरी मुस्कान की मधुरिमा पर मुग्ध तेरी ओर बढ़ रहा हूँ और यदि तू मुझे निराश करेगा तो भी मेरा दीवानापन तेरी मुस्कान में सराबोर रहना ही पसन्द करेगा, कभी तो तेरी क्रूरता करुणा में बदलेगी।

३१-१२,७१

⊙

अनुरागमय !

॥ पचास ॥

अनुरागमय !

नव वर्ष के मधुमय स्वर्णिम नव विहान की मधुवेला में तुम्हारे लिए मैं कितना उत्सुक हूँ । अनुराग के रस-बिन्दुओं में नहायी तुम्हारी स्मृति मेरे हृदय-सर में कमलिनी-सी उदास सोई पड़ी है······आह ! कोई उषा के मधुर आलोक सदृश तुम्हारे आगमन का सन्देश देता जिसे पाकर पंकजा-याद मुस्करा कर विकसित हो जाती तथा मानस की शोभा दुगुनी हो जाती और जब तुम आ जाते तो हृदय का यह फूल तुम्हें समर्पित कर तुम्हारे अनुराग का वरदान पा जाता और जब तुम चले जाते स्मृति की सरोजिनी तुम्हारे अनुराग का मधुनीर बरसाती ।

१-१-७२

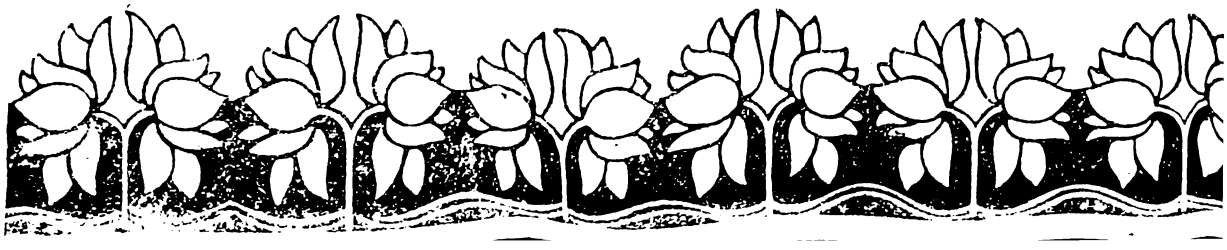

⊙

स्नेहमय !

॥ इक्यावन ॥

स्नेहमय !

आज मैं कितना खुश हूँ·····तुमने मुझे एकदम अपना बना लिया। तुम्हारा समर्पण कितना हसीन लग रहा है। यह समर्पण अत्यन्त आकर्षक है। इसके आकर्षण से आकृष्ट होकर मैंने भी स्वयं को तुम्हारे हवाले कर दिया। अब तो तुम्हारे मौन नयन-संकेत ही मेरी जिन्दगी की गति का निश्चय करेंगे।

प्रिय ! समर्पण के वे पल स्मृति के कपोलों को अब भी चुम्बन-दान से निहाल कर रहे हैं। प्रणय से आर्द्र तुम्हारी झुकी पलकें उठीं और फिर चितवनों का संगम हो गया। तुम्हारी दृष्टि के वे प्राणवान् संकेत कुहुक-से मेरे हृदय पर छा गये और तभी स्नेहिल नजरें झुकाकर तुमने अपने को मेरी ओर बढ़ा दिया। आह प्रिय ! मेरा हृदय तुम्हारे हृदय से जा मिला। गंगा-यमुना के पुनीत मिलन सदृश हम दोनों के हृदयों का संगम पवित्र है, अमर है।

८-१-७२

⊙

यह शरद-श्री

।। बावन ।।

यह शरद्-श्री का अमित भण्डार·····। हरसिंगार सुमनों की मादक सुरभि और मालती लता की मीठी गमक से मौसम का आँगन भर उठा है। इनकी धवलिमा पर मुग्ध मयंक अपने रजत करों से इन्हें छूकर उल्लसित हो रहा है। धरती की सौन्दर्य-राशि पर आसक्त गगन-वासी नक्षत्र ललचायी आँखों से एकटक निहार रहे हैं। मानो इसमें अपने को डुबाकर सुन्दर बनना चाहते हैं। ओह! धरती के सौन्दर्य में नहा तो उठे ये पर नयन अभी भी अपलक हैं·····और यह चाँद! केवल धरा को रश्मि-करों से स्पर्श मात्र ही कर सका। उसके नाजुक कर धरती को अपने में समेट नहीं पाये। थककर वह उदास हो गया, रोकर चला गया और धरती उसके अश्रुकणों से भींग उठी। ये शबनम की बूंदें नहीं, चाँद की विरह-वेदना की लेखमालाएँ हैं।

१६-१०-७४

⊙

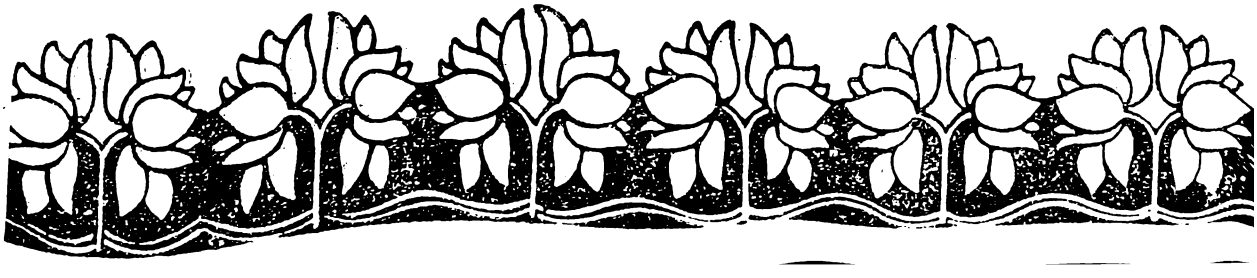

प्रिय मेरे !

।। तिरपन ।।

प्रिय मेरे !

आज जब इस सम्बोधन से तुम्हें मेरा अन्तर पुकारता है तो अनेक स्मृतियों के बबूलों में स्नात हो जा रहा है। वह भी एक दोषा थी पर कितनी निर्दोष,..... निर्मल जीवन सदृश एवं स्निग्ध नवनीत जैसी, जब हम दोनों एक-दूसरे को अपलक निहारते अघाते न थे। मन-मधुप कमल-कोषों सदृश तुम्हारे नयन-कोषों में समा जाने के लिए कितना अधीर एवं उत्सुक था। तुम्हारे नयन-कोरों पर झलकते मधुनीर में मेरा सराबोर होना कितना भला लगा था तुम्हें भी। तब मुझे लगा था कि इन मधुमय पलों की शाम नहीं होगी। ओह ! तुम्हारे स्नेह की वह मध्याह्न वेला जिसमे पिघलकर वह चला था यह मन मेरा।

पर आज की क्षणदा के क्षण कितने विलक्षण एवं अनजाने-से हो रहे हैं। तुम्हारी स्मृति के सजल वायु का स्पर्श पाते ही बादल के खण्डों सदृश मन आँखों की राह झरने लगा है। क्या बताऊँ ? प्राण ! मन का नीर नयन के उमड़ते मेघों के उदर में समाकर क्षणदा के इन क्षणों को भी गीला कर रहा है। यह क्षण उदास और यह क्षणदा भी। हृदय का स्नेह उमड़ते नयनों ने लेकर हृदय को सुखा दिया, उसकी रेत से स्नेह की गन्ध कभी-कभी मौसम की सर्द हवा में मिलकर तुम्हारे स्नेह की रसमयता के लिए तड़प उठती है और तब यह सम्बोधन दुखता है।

८-१-७५

⊙

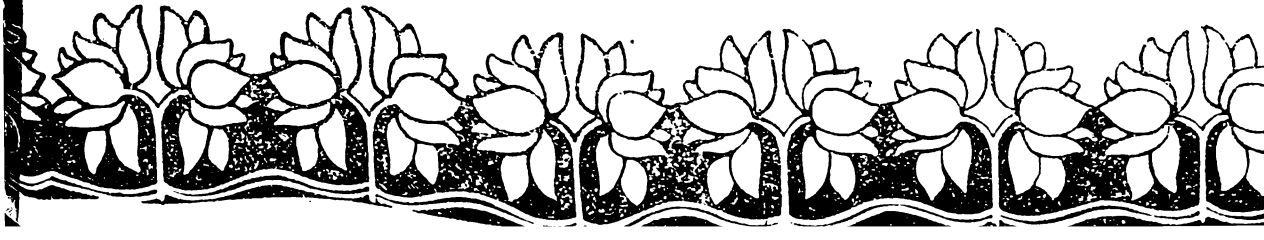

शिशिर की यह रात

॥ चौवन ॥

शिशिर की यह रात विरह-विधुरा-सी रो-रोकर धरती के आँचल को शबनम के आँसुओं से भिगो रही है,·····नहीं-नहीं, वियोगिनी रात के आँसू पोंछते-पोंछते धरा का आँचल भींग गया पर निशा में ऐसी तड़पन कि आँसू रुकते ही नहीं। ओह! विरह से तड़पती यह जवान रात न जाने कौन-सा जुर्म ढायेगी। देखता हूँ पीपल के पत्ते रोते-रोते धरती की गोद में जा गिरते हैं, शीशम की उदास डाली के नीड़ का वासी एक अकेला पखेरू रह-रहकर तड़प उठता है और सन्नाटे के वातावरण को उसका करुण स्वर चीरता हुआ देर तक गुंजित होता है। मौन उदास प्रकृति, आँसू बहाती रात और बिलखता अकेला तरुवासी पखेरू·····ये सभी मेरी जिन्दगी के रूप बन रहे हैं, प्रतीक हो रहे हैं केवल तुम्हारे अभाव में·····मेरे सर्वस्व! जवान रात की वेदना नहीं देखी जाती, इसे मिलन-यामिनी बना दो। प्रिय! प्रकृति को अपनी मधुमय मुस्कान से प्रफुल्लित कर उसे भी हँसा दो और तब, तब जानते हो वह एकाकी तरुवासी अपने नीड़ से बाहर झाँककर प्रणय-गीतों में ध्वनित हो उठेगा·····आह प्रिय! आ जाओ।

१४-१-७५

⊙

प्रियवर !

।। पचपन ।।

प्रियवर !

अलगाव के इन सूने पलों में लगाव की कशिश·····ओह ! कैसी छटपटाहट है, वेदना के डैने नाकाम हो गये हैं और वह जैसे पड़ी है—निराश, असहाय और दीन। थके-प्यासे पंछी-सा मन उत्कण्ठा की लहरदार टहनी के सहारे टकटकी लगाये चकोर की प्रीति को चुनौती दे रहा है। वारि-निःशेष आँखें अभी भी तुम्हारे नयनों की मासूम शोखी के लिए बेकरार हैं पर ये बरस नहीं सकतीं। क्या बरसें प्रियतम ! बरसे हुए बादल-सी हल्की, उदास और डरी-डरी-सी हैं ये जिनके स्वरू करुणा को भी रुलाई आ जाती है। भोली मैना-सी तुम्हारी याद आज दिल के पिंजड़े में कितनी बेचैन है—यह मैं तुम्हें कैसे बताऊँ·····कामना के सुनहरे महीन तारों की जाली से निर्मित यह दिल का पिञ्जर जिसमें तड़पती नन्हीं जान-सी तुम्हारी सुधि·····क्या कभी तुम्हें इन पर भी प्यार आता है ?

१८-३-७७

⊙

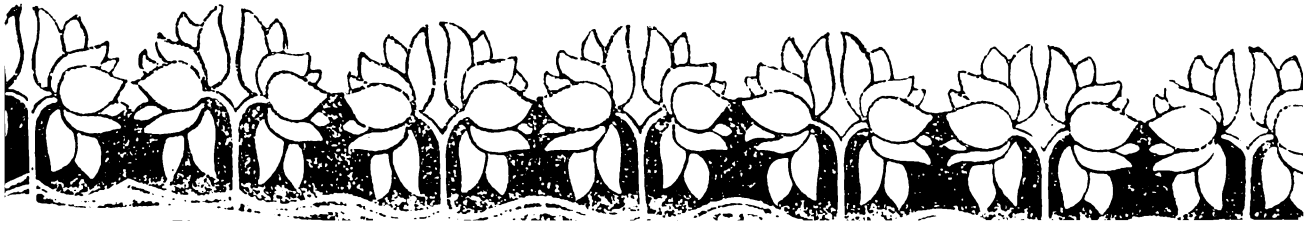

दोस्त ! यह जीवन

॥ छप्पन ॥

दोस्त !

यह जीवन का पथ और उस पर उमर के ये गतिशील पाँव बड़ी तेजी से वर्ष, मास और दिन के बड़े, मझोले और छोटे पड़ावों को छोड़ते चले जा रहे हैं। कैसे कहूँ कि मंजिल का मध्य पारकर उमर आगे बढ़ी है क्योंकि बड़ी अनिश्चित है इसकी सीमा—जाने कब अचानक अन्त आ धमके या वह अन्तहीन हो जाने कब तक प्रतीक्षा की स्थिति बनाये रहे।

मैं कहाँ भटक गया·····ओह ! तुम्हारी स्मृति तस्वीर बनकर मेरे साथ है। तस्वीर बड़ी पुरानी है पर तनिक भी धूमिल नहीं। तुम्हारा रूप, तुम्हारा स्नेह और तुम्हारी भावसिक्त अनेक भोली भंगिमाएँ—इस तस्वीर की चमक, आकर्षण एवं भावुकताएँ हैं।

तुम्हारी मुद्राएँ·····! एक पल के लिए पलकें बन्द कर लेता हूँ पर ये उसी अहेरी भाव से मुझे बिलोके जा रही हैं जैसे तब निहारती थीं जब जीवन की नाजुकता को प्रौढ़ता का रुक्ष स्पर्श नहीं मिला था। आज उन्हीं अदाओं की चितवन ने पुनः नाजुकता की अनुभूति करा दी। प्रौढ़ता की सम्पूर्ण रुक्षता गीली होकर नाजुक हो गयी। तुम्हारी प्रीति की मिठास के अनुभव से जीवन में स्वाद लौट आया है। पल भर के लिए उमर इन्द्रधनुष के रंगों का अनुराग पाकर अघा जाती है।

७-१-८०

⊙

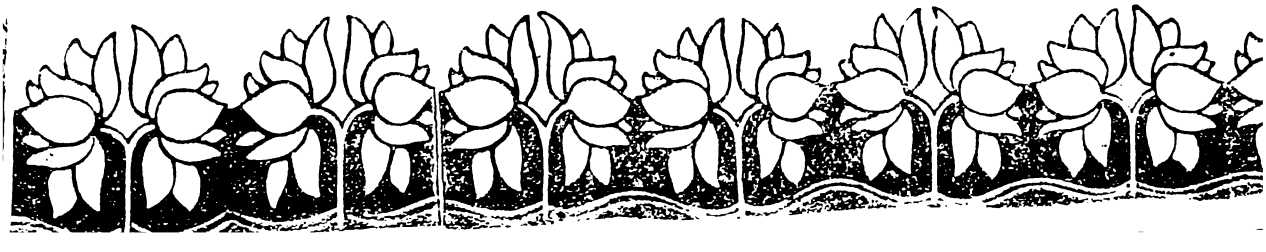

प्रिय ! हिम सदृश

॥ सत्तावन ॥

प्रिय !

हिम सदृश स्वच्छ हृदय के थाल में प्यार का नवनीत लिए जब तुम मेरी ओर मुड़े निर्धूम अग्नि सदृश मेरे तप्त हृदय के प्यार के स्फुलिंगों को जैसे जीवन मिल गया, जवानी मिल गयी और मेरे आसपास का सारा माहौल तुम्हारे प्यार की मीठी महक से भर उठा। भरपूर मस्ती की अनुकूलता से परिवेश का उत्तरीय रंगीन हो गया।

मेरी जिन्दगी का हर पल आज भी उन्हीं कुछ पलों की परछाईं बन मुझे तुम्हारी प्यार-भरी मनुहारों की झलक की ओर उन्मुख किये हुए है। उमर के मध्याह्न में भी आज उन रसमाते पलों के लिए मैं कितना आतुर····· कितना उद्विग्न और कितना उन्मत्त हूँ·····यह कैसे बताऊँ·····शब्द मेरे अन्तर में उभरते नहीं····· अभिव्यक्ति के स्वर हृदय की दहलीज पर पड़े बाहर आने में मजबूर, अक्षम····· विवशता पर तड़पन टकराकर उसी दहलीज पर जा स्वरों से लिपट जाती है। तब मैं निढाल तुम्हारी स्मृति की गोद में मुँह छिपा लेता हूँ।

१२-१-८०

⊙

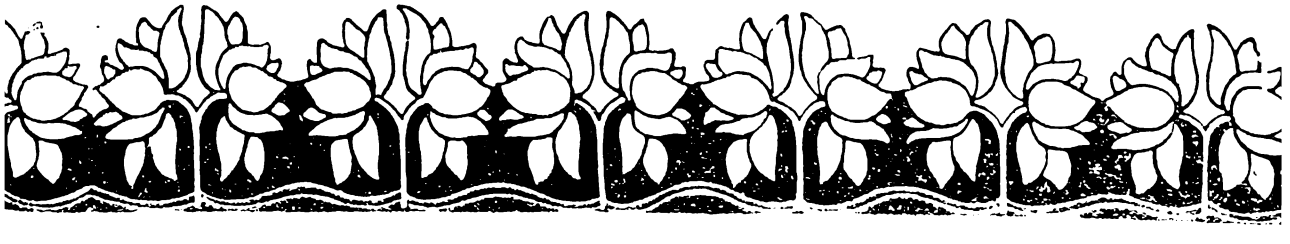

प्रियवर ! अनुराग

।। अट्ठावन ।।

प्रियवर !

अनुराग की एक खुशनुमा कुटिया सबकी तीखी आँखों से दूर श्रद्धा एवं भावुकता की वल्लरियों की आड़ में निर्मित हुई थी। बेला सुमनों की भीनी सुवास सदृश श्रद्धा और दाख-फलों की मिठास सदृश भावुकता वसन्त के सुहाने मौसम में कुटिया में प्रस्थित अनुराग के देवता की प्रतिमा का शृंगार करती दूर पर खड़ी जवान नीम के फूलों की कसैली गंध सदृश सरसता देवता के चरणों को छूकर निदाघ की तपन को एक पल के लिए शीतलता में बदलती। पावस-देवता की मनभावनी ऋतु--जब सावनी मेघ सदृश यौवन की मुस्कान को देवता की रतनार आँखों का रंग और मांसलता प्राप्त कर जाता। छितवन के कुसुम किरीट देवता को मादक सुरभि से सराबोर कर देते। और·····कैसे कहूँ प्रिय, हेमन्त-शिशिर की कड़कड़ाती शीत भी देवता का मन उदास नहीं देख पायी।

पर आज·····कुटिया पर कुदृष्टि की काली छाया·····देवता की प्रतिमा को जैसे कोई बरबस उठाकर दूर करना चाहता है। ओह! हेमन्त की साँझ कितनी डरावनी और शिशिर का पवन कितना क्रूर लगता है। छितवन के कुसुम-किरीट में कीटों का वास हो गया है। शरद् को रुलाई आ जाती है और सावन के मेघ निर्जल हो यौवन की असामयिक मौत से किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। निदाघ की तपन से झुलस गयी है कुटिया और वसन्त का मौसम कितना उदास—कितना दर्दीला·····दाख-फलों की मिठास जैसे छिन गयी हो और बेला के फूल की आँखें रोते-रोते जैसे सूख गयी हैं, नीम जवानी में ही बूढ़ी प्रतीत होने लगी है और देवता का शृंगार सिसकने लगा है।

२९-४-८०

⊙

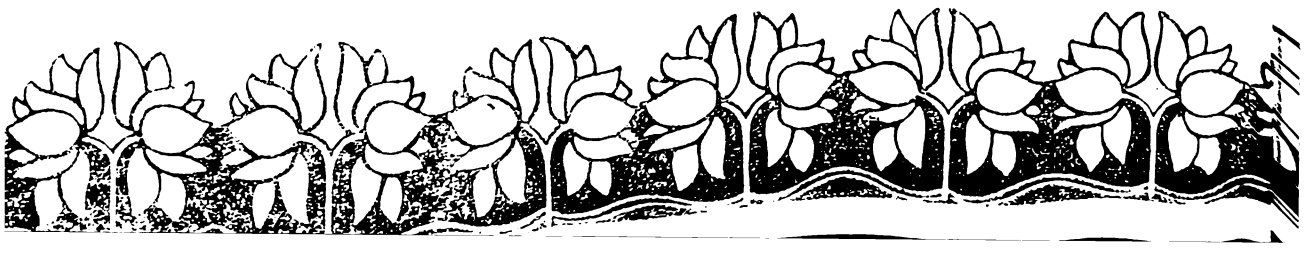

प्रिय ! तुम्हारी

॥ उनसठ ॥

प्रिय !

तुम्हारी उदासीनता का उतरा स्वर और स्वर की गहराई हुई उदासीनता को मेरी अनुभूति-डगर से गुजरने का यह पल मैं कितनी बेबसी से झेल सका—यह कैसे बताऊँ····· शब्द नहीं मिलते। यही समझो ठगा-ठगा-सा, चकित कभी तुम्हें देखता हूँ, कभी उस पल की मुद्रा का ध्यान करता हूँ। अब दाख-फलों में मिठास नहीं, खट्टेपन का स्वाद मिलता है। बेला के फूलों से वास कहीं दूर चली गयी है। रूप की मादकता वियोग की करुणा में समा गयी है।

और भी····· हृदय-नीड़ का वासी अनुराग का पंछी वहीं सिमटा मौन आँसू ढार रहा है। आँसुओं को शब्द और भावों को रूप देने की जैसे मनाही हो गयी है। थके डैनों में देह की हर पोर समोये प्यार का परिन्दा जैसे अब चहकेगा नहीं, स्मित नहीं बिखेरेगा, पर आँखों की राह प्यार का उमड़ता सैलाब निर्बाध झरने की भाँति प्रवहमान रहेगा। मासूम बेचैन पंछी तुम्हारे उतरे स्वर में तुम्हारा कलगीत खोजेगा और स्वर की गहराई हुई उदासीनता में मधुहास के लिए तड़पेगा।

५-६-८०

⊙

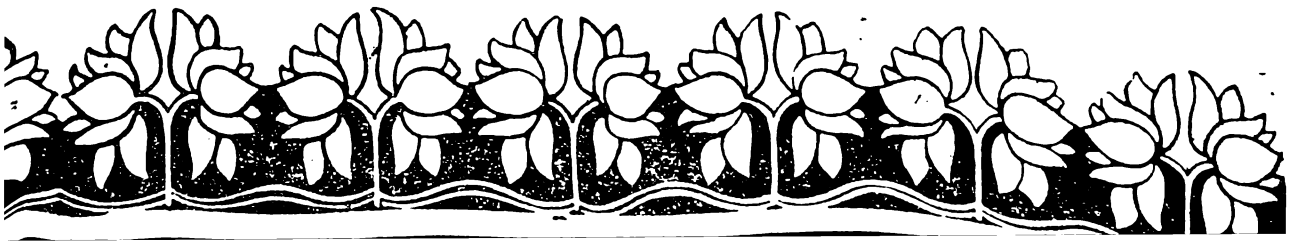

प्रियवर ! तुम्हारी

॥ साठ ॥

प्रियवर !

तुम्हारी प्रीति-लता मेरे अनुराग के नन्हें क्षुप को अपनी नरम बाँहों में आवद्ध किये झूम-झूमकर अमित चुम्बन-दान से निहाल कर कितनी मुदित है। दोनों का साहचर्य पुरातन है, फिर भी चिर नूतन है। हर पल दोनों की आँख-मिचौनी चलती रहती है। प्यार का यह खेल दोनों को सदैव असंख्य उत्कण्ठाओं से भर देता है। हम दोनों परस्पर ऐसे ही आवद्ध हैं।

सावनी स्वर्णनीरा उफनती, उमगती सदानीरा से ललक कर मिलती है और मन्थरगामिनी सदानीरा स्वर्ण-सरि को हृदय में समेट लेती है। तब कितनी मग्नता की अनुभूति होती है। हम दोनों के परस्पर अनुराग के संगम का दृश्य भी ऐसा ही मोहक है।

९-६-८०

⊙

प्रियवर ! दीपोत्सव

॥ इकसठ ॥

प्रियवर !

दीपोत्सव की इस मधुरिम वेला में जगमगाती मोम वर्तिकाओं सदृश तुम्हारी याद की अनेक वर्तिकायें मेरे हृदय के गाँव में आलोक बिखेरने लगी हैं। मोमबत्ती की लौ कितनी मोहक, कितनी सुघर·····और इसका आलोक कितना शीतल है····· तुम्हारी स्मृति की लौ भी अनुराग का आलोक बिखेरती ऐसी ही मोहक, रमणीय और प्यारी। अमा-निशा में यह दीपों की जगमगाती दीवाली और तुम्हारी यादों की रोशनी मेरे हृदय में व्याप्त अँधेरे को जगमगाहट में ढालती आज यह सुखदा हो रही है। इस स्मृति में विछोह की जलन नहीं, प्यार की मोहक उजियारी है।

७-११-८०

⊙

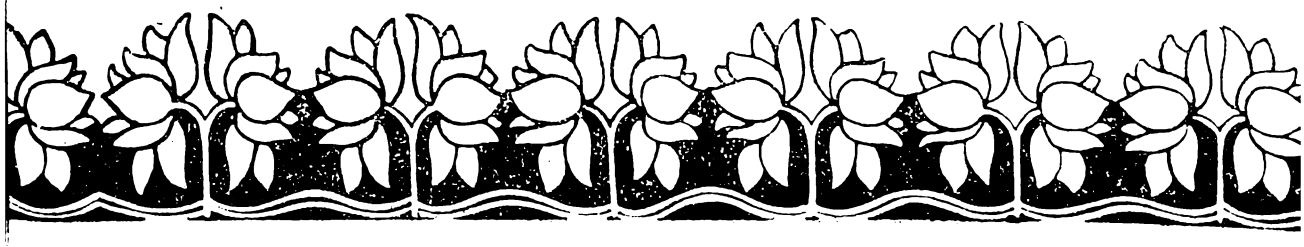

प्रियतम ! बाट

॥ वासठ ॥

प्रियतम !

बाट निहारते पलकें भारी हो रही हैं पर मजाल क्या कि ये जरा भी झपें। दृष्टिपथ के चारों ओर विछोहाग्नि के स्फुलिङ्ग उड़ रहे हैं। बेचैनी की गरम हवा में मनोकामनाएँ झुलस रही हैं। तड़पन की तेजी में आँखें अंगारे उगल रही हैं। प्यार का पानी नयनों की राह बहकर सूख गया। इस स्रोत का उद्गम-स्थल हृदय का जलाशय जैसे जल-शेष हो गया।

प्यारे ! वियोग के इन गिरि-पलों में तुम्हारी स्मृति की झंझा मुझे उतनी ही बेरुखी से झकझोर कर निढाल किये दे रही है जितनी बेरुखी तुमने मेरे लिए सँजो रखी है। पर क्या करूँ प्राण ! तुम्हारी इस मासूम बेरुखी पर भी मन मचला जाता है। लापरवाही से स्नात इस बेरुखी से तुम कितने मधुर और मासूम हो·····कल्पना की इस अनुभूति में डूबकर मैं विह्वल हो उठता हूँ। झुलसती मनोकामनाएँ वियोग के दाह में भी शीतलता को छू लेती हैं। प्रतीक्षारत नयन के कोरों पर पुनः प्यार के नीर-कण झलकने लगते हैं जैसे हृदय की तलैया में प्यार का पानी पुनः आ जाये। जैसे डूबते को तिनके का, सूखते को स्रोत का बड़ा भरोसा होता है वैसे ही तुम्हारी याद मुझे जीने का और प्यार तुम्हें पाने का भरोसा देते हैं। इसी भरोसे तुम्हारे लिए पलकें बिछाये हूँ।

२८-११-८०

⊙

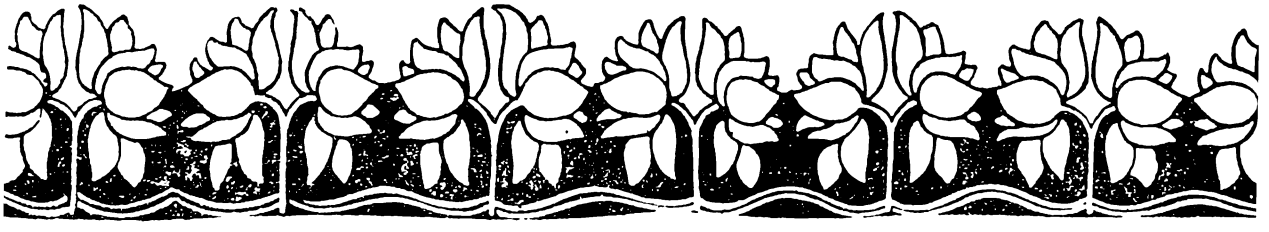

प्रियतम ! छितवन

॥ तिरसठ ॥

प्रियतम !

छितवन-सुमनों की मधु-मदिर गन्ध से स्नात समीरण धीरे-धीरे चलकर इस रात को मदहोश कर रहा है। मधुर गंधवाही इस पवन की मन्द गति तुम्हारे प्रिय आगमन का सन्देश है। इसका रसीला-नशीला स्पर्श कितना सुखदाई·····मानो तुम मुझे छू रहे हो। पाटल-कुसुमों की नाजुक पाँखों से छनती महक से सराबोर बयार का दूसरा झोंका इतना स्नेहिल·····मानो तुम्हारे होंठ मुखरित होने के लिए अवखुले हो रहे हों।

रजनीगंधा-पुष्पों की मासूम-शोख सुन्दरता की धाराओं के संगम से फूटती मोहक हवा की वल खाती एक लहर·····मानो हम-तुम परस्पर हिल-मिल रहे हों····· काश ! प्यार की इस मधु-रजनी का कोई सवेरा न होता।

२-१२-८०

⊙

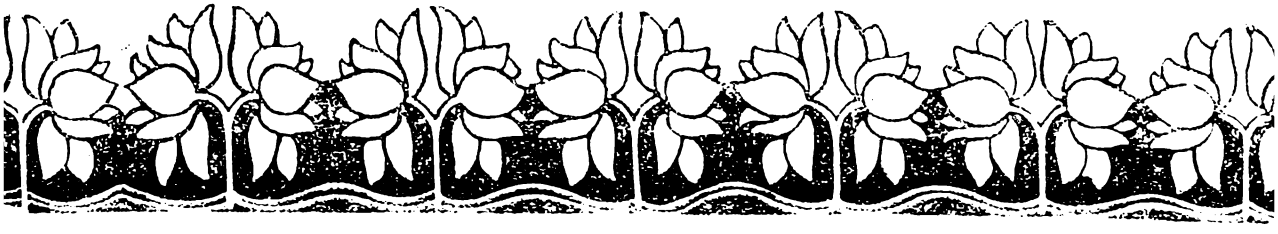

प्रिय ! दीर्घ

॥ चौंसठ ॥

प्रिय !

दीर्घ अन्तराल के बाद तुम्हारे दीदार से नयन भर आये। प्यार से पूरित उमड़ते दिल की पहचान नयन-कोरों पर झलकने लगी। रुँधे गले को साफ करके स्रवित अनुराग को दुराने की असफल कोशिश करते हुए जब मैं तुम्हारी ओर उन्मुख हुआ तो शब्दों को अभिव्यक्ति के उपादान ही नहीं मिले। मुखर होने की अभिलाषा मौनता में परिणत हो गयी। शिकवा-शिकायतों की एक बस्ती, जिसे मैंने दिल में बसा रखी थी, तुम्हारे मौन-स्नेह निर्झर की बाढ़ में बह गयी। सोचा था मिलते ही गम्भीर बादल सदृश घुमड़ते हुए हृदय में भरे शिकवा-शिकायतों की झड़ी लगाकर तुम्हारे मान के अवगुण्ठन को भिगोकर स्वयं मानी की भूमिका ग्रहण कर लूंगा, तब तुम मुझे मनाने के लिए मधु-वचनों की सौगात के साथ मेरे और समीप होंगे। पर·····तुम मुझे अपलक देखते रहे, मानो शिकायतों की बरसात के लिए तैयार हो। लेकिन, ओह ! प्यारे ! चितवन के मौन संकेतों की झंझा में बादल फटकर बिखर गये। स्वच्छ हृदय तुम्हारे प्यार की धूप में अपनी छाया को देखकर कितना मुदित, कितना उत्सुक·····तुम्हें कैसे बतलाऊँ मेरे अपने।

१५-१२-५०

⊙

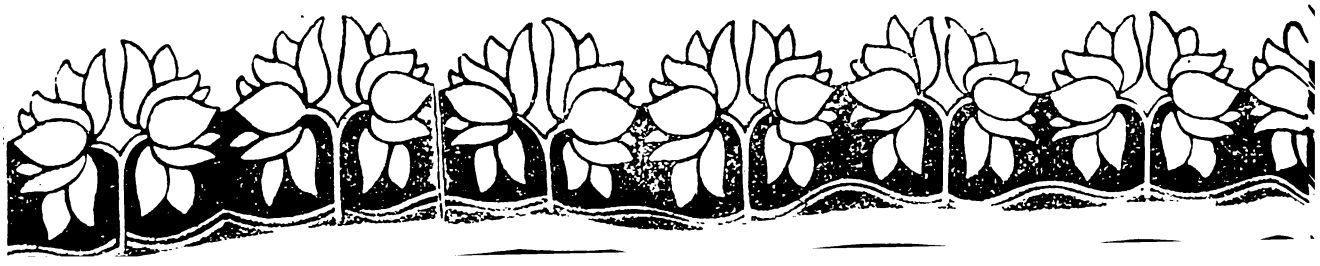

प्रियवर !

॥ पैंसठ ॥

प्रियवर !

बाट जोहते इन नयनों की निरीह उदासी से आइना भी उदास हो जाता है। मृगशावकों की मासूम चपलता को लजाने वाले इनकी हालत हिम की चोट खाये कमल-कोषों-सी हो गयी है। इनकी लालिमा में राजीव का सौन्दर्य नहीं, रक्त की प्रगाढ़ता है। नीर भरी गागर-सी इन अँसुवाई आँखों में करुणा छलछला रही है। चितवन की प्रीति भींगी मैना-सी फड़फड़ा रही है। खंजन-निकर जैसे इस खंजन-युग्म को असहाय देखकर सशंक चुप हो अपने डैनों में सिमटना चाहता है।

प्राण ! तुम्हारे आगमन की आस इन्हें बड़ी प्यारी है। उसी के सहारे पलकों में संचित अनुराग की नाजुक नमी का अस्तित्व है। शारदीय शबनम सदृश सुन्दर सुकुमार मनकों के हार से सज्जित इन्हें तुम्हारी प्रतीक्षा है। लम्बा इन्तजार न कराओ प्रियतम, इनके कुम्हलाने का अफसोस तुम्हें भी सालेगा। अतः प्यारे ! जरा शीघ्रता करो····· जिससे आइने की चमक द्विगुणित हो उठे; करुणा की जगह प्यार छलके और प्रीति की मैना चितवन-वीथी में खुशी का पर्व मनाये। इन खंजनों की खुशियाली में सभी खंजन फुदकने लगें। स्नेह की लाली इतनी सघन एवं मनोरम हो उठे कि राजीव जलाशय में शरमा जाये·····फिर पूछूँ "मैं कब तक बाट निहारूँ।"

२२-१२-८०

⊙

प्रिय ! जाड़े की

॥ छाछठ ॥

प्रिय !

जाड़े की एक उदास शाम सदृश मेरी जिन्दगी मुझे हर पल महसूस होने लगी है। गोधूलि वेला के तरु-पातों की ढेर-सी उदासी मेरे जीवन-तरु के पातों में समा गयी है। जैसे दूर मन्दिर में साँझ की घण्टा-ध्वनि सदृश वियोग-वेला की करुण पुकार रह-रहकर हृदय में ध्वनित हो रही है। तुम्हारे प्यार की पुकार दूरी के व्यवधान के कारण करुण लगने लगी है। प्राण ! तुम्हारे वियोग में बावरे हुए ये डबडबाये नयन रह-रहकर अश्रुकण ढरका देते हैं जैसे रात शबनम के आँसू ढरकाती सवेरे की प्रतीक्षा में हो। शीतकालीन अलाव से बड़ी खूशनुमा गर्मी मिलती है पर अग्नि का तीव्र प्रज्ज्वलन असह्य हो जाता है, वैसे ही अभी तक तुम्हारी दूरी की ओर से बेखबर प्रतीक्षा के सहारे मेरा प्यार जवान हो रहा था, पर अब विरह-काल असह्य हो रहा है। अधीर हृदय का प्यार तुम्हारी बिछुड़न से तड़प उठा है।

२६-१२-८०

⊙

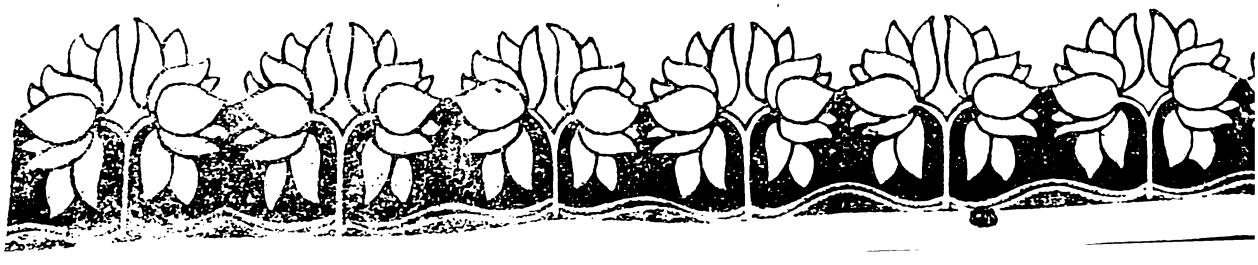

स्नेहमय ! अनुराग

॥ सरसठ ॥

स्नेहमय !

अनुराग के उत्सुकता भरे पलों में सर्वस्व-समर्पण की उत्कट अभिलाषा की सघन बदली हृदय-देश में घिर कर देर तक झकझोर कर बरसती रहती है। दो हृदयों के संगम की अवस्था बड़ी मोहक होती है। एक क्षण का व्यवधान भी बादल की गर्जना सदृश हृदय को आन्दोलित कर देता है। झटके में हुए संस्पर्श से विद्युत् के प्रकाश सदृश आलोक से हृदय-देश जगमगा उठता है। उस संस्पर्श की लालसा मन में समाई रहती है—सदैव। बिछुड़न के पलों में संगम की लालसा बिलखती है। कितनी वेदना होती है जब बादलों में गर्जना होती रहती है पर बिजली नहीं कौंधती। मिलनोत्सुक हृदय संस्पर्श के एक झटके के लिए कितना तड़पता है, मेरे अनुराग-सम्बल, यह तुम्हें कैसे बतलाऊँ।

२९-१२-८०

⊙

प्रिय ! शबनम

॥ अरसठ ॥

प्रिय !

शबनम में नहाई हेमन्त की यह सुबह बड़ी प्यारी और हसीन है क्योंकि इसी वेला में तुम्हारा दीदार हुआ है। जब समस्त विश्व बालारुण की एक सुनहली मुस्कान के लिए आकुल था, तुमने अपनी मुस्कान की स्वर्णिम धूप से मेरे दिल का कुटीर भर दिया। वियोग के शीत में ठिठुरता इस कुटिया का वासी अनुराग-योगी अनन्त मोद में भरकर तुम्हारे प्यार का गीत गाने लगा। प्यारे! तुम्हारी मधु स्मिति की यह धूप इतनी सौम्य, इतनी निर्विकार कि हेमन्ती कुहासे सदृश तुम्हारे अभाव का कुहासा छँट गया। नयनों से टपके तुहिन-विन्दु-से अश्रुकण इस धूप के स्निग्ध ताप से सूख गये। बार-बार इस धूप में तैरती अपनी स्नेह-छाया को निहारकर मैं विभोर हो जाता हूँ। तुम्हारी मुस्कान की यह शिशु-धूप मुझे इतनी भाती है कि मेरा प्यार सदैव इसमें स्नात रहना चाहता है। मुस्कान की तुम्हारी इस भंगिमा का मैं उपासक हूँ।

३-१-८१

⊙

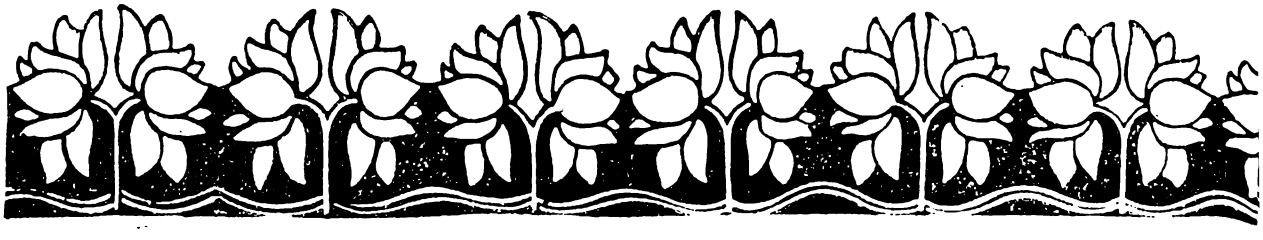

प्रियतम ! मेरे

।। उनहत्तर ।।

प्रियतम मेरे !

इस कोलाहलमय भीड़ भरे समाज में भी मैं कितना विपन्न हूँ। काम-काज की दुनिया में कोई विरला ही भीड़ से बाहर रहता है। इस भीड़ में भी कितना एकाकी हूँ। भीड़ में मेरा एकाकीपन ही मेरी विपन्नता का कारण है। प्रिय मेरे, राज-पथ पर लोग समूह में या अकेले चलते रहते हैं निरन्तर·····पर किनारे के उस एकाकी तरु की व्यथा से उनका क्या रिश्ता ?·····मैं भीड़ में डूबकर भी अकेला हूँ। चाहता हूँ भीड़ से एकदम अलग-अकेला हो जाऊँ और तब तुमसे मिलकर एकाकीपन का दर्द दूर करूँ।

तुमसे अकेले मिलने की साध मेरे अन्तर की वह रंगीन कल्पना है जो कपोती सदृश मासूम नजरों से निहार रही है। इस कपोती को तुम्हारी चितवन की प्रीति चाहिए। तुम्हारी प्रीति का वरदान पाकर मेरी साध का अकेलापन भी दूर हो जायेगा। कोमल सुमन-सी मेरी साधें तुम्हारी प्रीति के शबनम में भींग कर मुस्करायें—बस यही है तुमसे अकेले मिलने की लालसा का रहस्य।

७-१-८१

⊙

प्रिय ! मेरे

॥ सत्तर ॥

प्रिय !

मेरे हृदय में साधों का एक गाँव बसा है। ये साधें एक से बढ़कर एक हैं····· नाजुक नवनीत-सी, मधुर मधु-सी, मासूम मुग्धा-सी, सुन्दर खिलते गुलाब-सी और प्रिय तुम-सी। इनकी सुकुमारता, मधुरता, मासूमियत, सौन्दर्य और प्यार—सब तुम्हारे लिए हैं। इन साधों को तुम्हारी चितवन का प्यार चाहिए। इन्हें सीधे निहारोगे तो दृष्टि की प्रखर आँच से नवनीत पिघल जायेगा। लापरवाह नजरों से यदि देखा तो मधु छलक जायेगा। अपांगों से निहारा तो मुग्धा शोख हो जायेगी। उदास दीदार से गुलाब की पाँखें सूख जायेंगी, पर झुकी पलकों से निहारते ही ये तुम पर न्यौछावर हो जायेंगी। प्यारे ! यह गाँव तुम्हारी झुकी पलकों का है।

१५-१-८१

⊙

प्रियतम ! देखो न

॥ इकहत्तर ॥

प्रियतम !

देखो न·····जल-बिन्दु सदृश जीवन के पल अस्तित्वहीन हो रहे हैं। जीवन बदलाव का कायल है वैसे ही जैसे सुबह शाम की। ढलते सूरज की किरणों सदृश जीवन के शेष पल अंधकार की सूनी गोद में समा रहे हैं। सुबह की तरह यह सलोना जीवन कितनी जल्दी साँझ की उदास कारा में फँस जाता है। तब जिन्दगी टिमटिमाते दीपक के सहारे तीव्र गति से अँधेरे में राह के लिए भटकने लगती है। अँधेरे के काले आवरण से आवृत यह जिन्दगी आलोक की एक मुस्कान के लिए तब कितनी बेचैन हो जाती है। नयी सुबह आने से पहले दीपक का बुझना एक सत्य है। अतः प्यारे ! जीवन के काले-गोरे सभी पल तुमसे एकाकार होने के लिए हैं। जीवन के उस पार जाने क्या होगा।

२१-१-८१

⊙

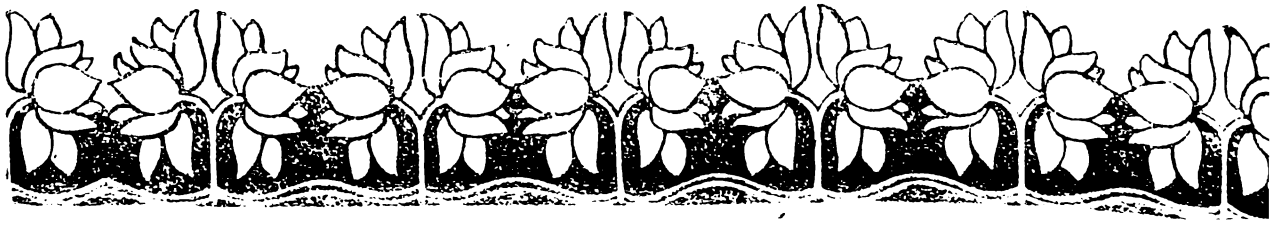

प्राणप्रिय !

॥ बहत्तर ॥

प्राणप्रिय !

गुलाब की यह लरजती डाल·····इसका यह एकाकी फूल बड़ा प्यारा है। निहारते ही इसकी शीतल सुन्दरता में आँखें नहा उठी हैं। समीर इसे चूमकर झूम उठा है और यह भी समीर के चुम्बन से आह्लादित है। इसके अगल-बगल काँटे भी बसते हैं। प्रेम-व्यापार में यह काँटों से बेखबर-सा हो रहा है। काँटे इसे तीखे निहार रहे हैं। प्यारे ! विछुड़न की इस बेला में तुम्हारी स्मृति मानस में टीस बनकर समा गयी है। काँटों का तीखापन·····चुभन की कल्पना से मन विकल हो उठा है।

प्रियवर ! इस अकेले पाटल-सुमन की हसीन पाँखों सदृश हृदय की कल्पनाएँ तुम्हारे अनुराग के रंग से बेहद खूबसूरत हो गयी हैं। तुम्हारे प्यार ने इन्हें वियोग की ओर से वैसे ही बेखबर कर दिया है जैसे काँटों की ओर से यह फूल बेखबर है। वियोग का यह शूल बड़ा तीखा है। तुम्हारे प्यार में बेखबर इसे एकाएक शूल की चुभन मिली। मैं चिन्तित हूँ कि डाल का यह अकेला फूल दूरी के दर्द से इस हृदय की भाँति कहीं आहत न हो जाये और इसकी पाँखों सदृश मेरी रंगीन कल्पनाएँ बिखर न जायें।

२५-१-८१

⊙

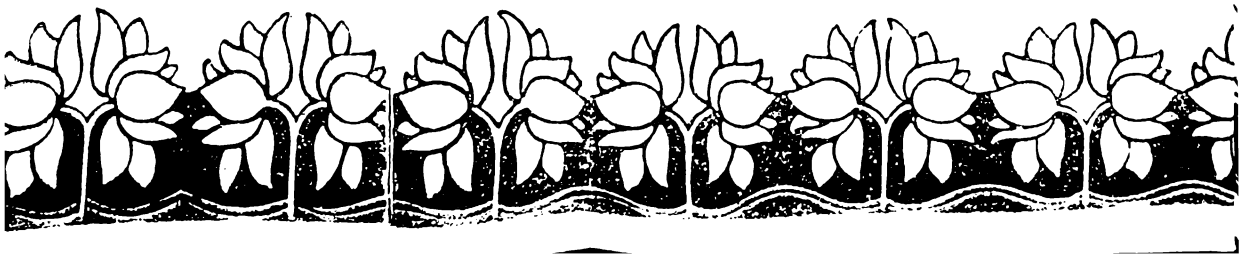

प्रियवर ! तुम्हारा

॥ तिहत्तर ॥

प्रियवर !

तुम्हारा समर्पित व्यक्तित्व मेरे स्नेह का प्रेरणा-स्रोत है। तुम्हारे आनन-सरोज से झरते सुनहरे पराग में मेरा स्नेह सदैव सराबोर रहना चाहता है। तुम्हारे रूप-वितान की छाया में मैंने अपनी स्नेह-प्रतिमा प्रतिष्ठित कर दी है। तुम्हारे समर्पण-निर्झर का पीयूष-जल पान कर मेरा स्नेह अमर होगा। अतः प्यारे ! स्नेह की प्रेरणा पर मुझे न्यौछावर होने दो, जिससे पराग में लिपटा स्नेह आनन-सरसिज की मिठास को चूमकर निहाल हो जाये और प्यार के अनगिनत खुशनुमा फूलों से लदी तुम्हारी रूप-बल्लरी मेरे स्नेह को सौरभ-मण्डित कर दे। उस सुरभि की मादकता से मेरा स्नेह उन्मत्त हो उठे। तुम्हारे समर्पण-निर्झर की वीचियाँ मेरे मानस-सरोवर के भावनीर से हिलमिल कर मेरे स्नेह को समर्पणमय बना दें। समर्पण और स्नेह का यह संगम बड़ा मोहक होगा।

२७-१-८१

⊙

सयाने प्रिय !

॥ चौहत्तर ॥

सयाने प्रिय !

तुम्हारा सयानापन जब ऐसा तो फिर भोलापन·····कल्पनातीत ही होगा। तुम्हारे इस सयानेपन पर प्यार के अलावा और कुछ नहीं आता। मासूम तेवर से घिरा तुम्हारा यह सयानापन नीड़ से झाँककर छिप जाने वाले उस शिशु-विहग सदृश आकर्षित करता है जिसके डैने उड़ने योग्य नहीं हुए हैं। तुम्हारा सयानापन चौकड़ी भरते शिशु-मृग का रूप आँखों में बरबस भर देता है। प्यारे ! शिशु-विहग और शिशु-मृग का सयानापन ही जैसे उनका भोलापन हो वैसे ही तुम्हारी भोली मुद्रा के मध्य तुम्हारा यह सयानापन सचमुच स्नेह-जल में भिगोने योग्य है।

५-२-८१

⊙

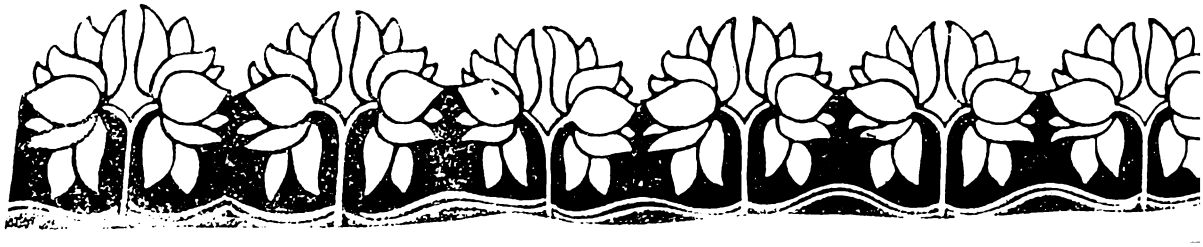

प्रियतम ! किनारे

॥ पचहत्तर ॥

प्रियतम !

किनारे होने की यह मुद्रा ही प्रदर्शित करना अभीष्ट था तो इस दिल में आये ही क्यों ? पहले अपनी मुस्कान से तुमने इसे अपनी ओर आकृष्ट किया । मुस्कान की संगीत पर मन-मृग न्यौछावर हो गया । तुम्हारी चितवन की प्रीति का रस बरसकर मुझे अनवरत सराबोर करता रहा, पर यह नयी रुखाई—देखकर अनदेखा बनना, मानी सदृश मुँह मोड़ना—इन अदाओं पर भी प्यार उमड़ता है । दिल की स्निग्धता पर नयनों की रुखाई क्या चल पायेगी ?

नहीं चली न !·····मेरे नयन-कोर साक्षी हैं, तुम अपनी चितवन से अनगिनत उत्कण्ठाएँ न्यौछावर करते-से मेरी ओर निहार रहे थे। नवनीत-सा प्यार रुखाई के हिमपात से जम गया था। मैं बढ़ता ही चला आया। काश ! इसे तुम्हारी मुस्कान की वासन्ती धूप का संस्पर्श मिल जाता । अतः प्यारे ! अपनी मुस्कान की किरणों से मेरे हृदय को छू दो, जिससे यह भी सरसिज-सा खिल उठे।

१०-२-८१

⊙

प्रिय ! वसन्त

॥ छिहत्तर ॥

प्रिय !

वसन्त का यह मादक मौसम, मनोभव के मनोरथ सदृश समस्त विश्व को अभिभूत कर रहा है। कुन्द सुमनों की राशि से झाँकती प्रकृति की अमित सुषमा उस शुक्लाभिसारिका-सी प्रतीत होती है जो अभिसार-हेतु इठलाती-बलखाती-झूमती प्रियतम के गाँव की ओर उन्मुख होती है। कुन्द कुसुमों की मीठी सुरभि में स्नात शीतल मन्द समीर प्रकृति अभिसारिका का दुविधा आँचल हटाकर मुदित हो रहा है। आसमान शबनम के फूल बरसाकर इसे खुश करता-सा लग रहा है। सूखी पछुवा वसन्त का स्पर्श पाकर सरस हो उठी। शिशिर की सतायी यह बयार वसन्त की अनुरागिनी बन सौन्दर्य से पूरित हो सम्पूर्ण प्रकृति को अनुरंजित कर रही है।

प्रियतम ! पर दूरी का दर्द कोकिल की कूक के मिस हृदय में साल उत्पन्न करता है। वियोगानुभूति की शीतल पछुवा से हृदय का अनुराग सिहर उठता है। ऐसे अवसर पर तुम्हारी मुस्कान की मीठी धूप के लिए मेरे हृदय का अनुराग तरसता है।

१६-२-८१

⊙

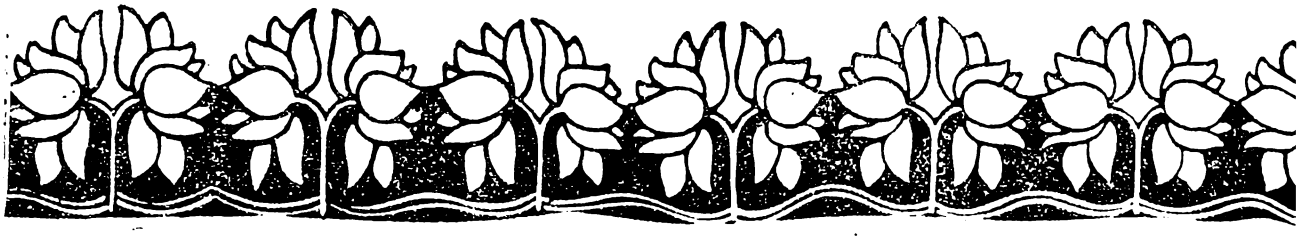

प्रियतम ! यह वसन्त

।। सतहत्तर ।।

प्रियतम !

यह वसन्त की मदिर यामिनी सजीले चाँद की रसीली मुस्कान से भर उठी है। केले के नाजुक पातों के झुरमुट से बरसती कौमुदी कुइयों को रससिक्त कर रही है। उधर सिसवानी के रन्ध्रों से बरसता शर्वरी का सौन्दर्य उस अभिसारिका के सौन्दर्य सदृश है जो श्वेत परिधान धारण कर मध्य निशा में अभिसार-हेतु प्रियतम के आवास की ओर लुकते-छिपते पर स्थिर भाव से चलती है। फूलों के रस पर शबनम की बूंदें--संगम श्लाघ्य है।

पर मेरे प्राण ! डगर भूले राही सदृश तुम न जाने कहाँ भटक रहे हो। क्या तुमने कोकिल का मदिर कूजन नहीं सुना? क्या वासन्ती समीर रसाल-सुमनों की मादक सुरभि तुम तक पहुँचाने में असमर्थ है? क्या महुए के फूल अपनी नशीली मधुरिमा से उस गाँव को अभी मदोन्मत्त नहीं कर पा रहे हैं, जहाँ तुम विलम गये हो। क्या स्मृतियों का गाँव तुम्हारे दिल की दुनिया से उजड़ गया है? प्रिय मेरे ! इन प्रश्नों का समाधान मौसम की पुकार है जो मात्र तुम्हारे दीदार से ही सम्भव है।

२४-२-८१

⊙

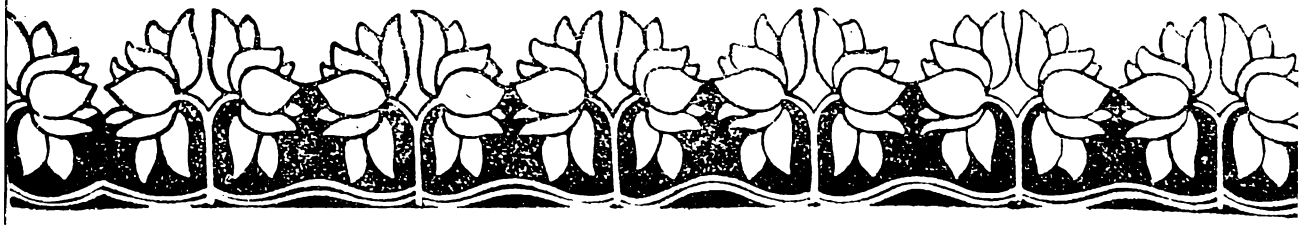

स्नेहमय ! तुम्हारे

॥ अठहत्तर ॥

स्नेहमय !

तुम्हारे प्यार में नियन्त्रण की क्षमता का अनुभव करके मैं एक बड़े सुख में लीन हो जाता हूँ। कभी नारियल के कड़े आवरण सदृश गम्भीर आनन और उसके भीतर की मुलायम गिरी सदृश तुम्हारी मृदु वाणी मेरे जीवन को संयम की दिशा की ओर उन्मुख करने में क्षम है·····तो कभी चितवन में झलकता प्यार का नीर मुझे मन्त्र-मुग्ध कर अपने लिए आकर्षण उत्पन्न करता है। पर कटीले तेवर से झाँकती शोख मुस्कान में तो मेरे प्राण का नियामक ही झलक दिखाकर मुझे अपने वश में कर लेता है। प्रीति के ऐसे उपादानों में बँध जाने को जी कितना आकुल रहता है। मेरे व्यक्ति की विशालता तुम्हारी मासूमियत के घेरे में आवद्ध हो जाती है, मेरा ओज तुम्हारे रूप की कान्ति पर न्यौछावर है और मेरा पौरुष तुम्हारे प्यार का पुजारी है।

१०-३-८१

⊙

प्रिय ! फागुनी

॥ उन्नासी ॥

प्रिय !

फागुनी ठण्ड सदृश तुम्हारी प्रीति बड़ी मोहक प्रतीत होती है। गुलाब-सुमन की पंखड़ियों-सी स्निग्ध एवं सुकुमार तुम्हारी चितवन-वीथी में सैर करती नन्हीं मैना-सी प्रीति जिसे निहारते ही मेरे अन्तस्तल का प्यार मेरी चितवन में आकर विभोर हो जाता है। तुम्हारी चितवन की प्रीति मेरे मन-पपीहे के लिए स्वाती नक्षत्र की वर्षा है।

प्रिय मेरे ! इसीलिए फागुन का गुलाबी शीत मुझे बेहद प्यारा है। इसीलिए मैना को देखकर तुम्हारे नयनों का लावण्य मेरी स्मृति को छूने लगता है और इसीलिए शारदीय मेघों के जल-कण मुझे अमित सुख की अनुभूति कराते हैं क्योंकि इनमें तुम्हारी प्रीति का सम्मोहन, उससे संगम और उसमें मज्जन का सुख है।

१६-३-८१

⊙

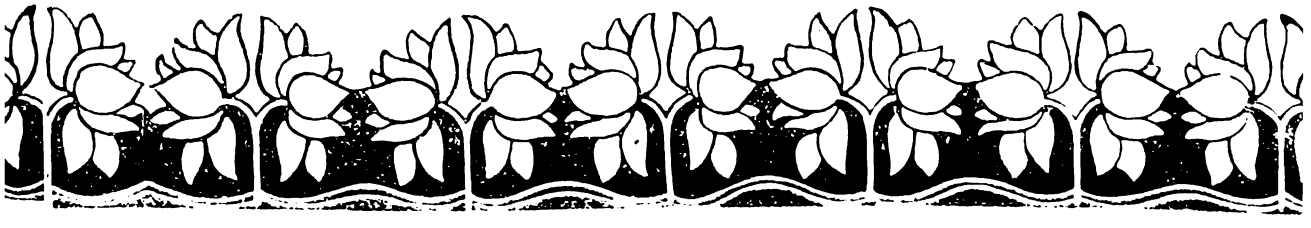

ऋतुराज !

॥ अस्सी ॥

ऋतुराज !

मधुमास द्वार पर दस्तक दे रहा है। स्वर्णिम विहान के तीस कलश क्रम से एक-एक कर उषा तुम्हारे अभिनन्दन-हेतु लेकर आयेगी और सुनहले रंग से तुम्हें सरावोर करेगी। लाल अबीर की तीस झोलियाँ उसी क्रम में लेकर सन्ध्या आयेगी और तुम्हारे दीप्त ललाट और सुकुमार कपोलों को रंगीन करके तुम्हें अंक में भर लेगी। वल्लरियों के भुजपाश में आवद्ध कर अनुराग-पर्व को सार्थक करेगी। पीपल और शीशम के नये, कोमल एवं चिकने पातों का धानी उत्तरीय ओढ़कर कोकिल वन्दीजनों सदृश प्रभाती गाकर सर्वजयी हृदयनिकेत को जगाकर तुम्हारे सम्मान में उपस्थित होने का सन्देश देगा और सझवाती गाकर वुलवुल मधुरात्रि के लिए तुम्हें आमन्त्रित करेगी। कौमुदी मधुगन्ध की बूंदें छिड़क तुम्हें उल्लसित करेगी और मधुअन्ध मधुपों की मदिर ध्वनि तुम्हारे अलसाये यौवन को जगायेगी।

२०-३-८१

⊙

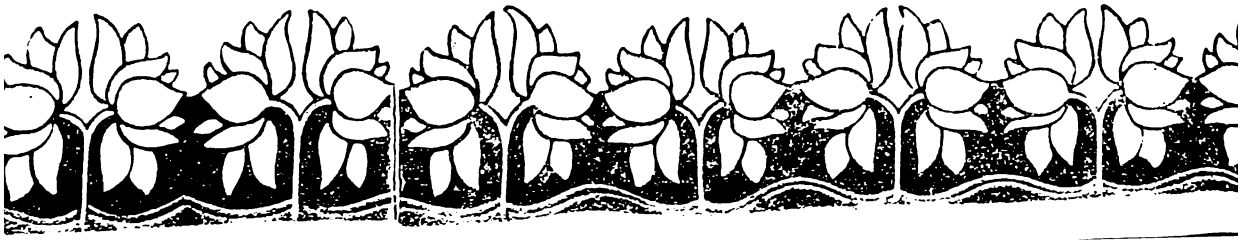

मधुमास !

॥ इक्यासी ॥

मधुमास !

तुम्हारी दस्तक सुनकर प्रकृति ने अपने हृदय का द्वार उन्मुक्त कर दिया। फिर क्या ? चारों ओर से मधु की पुकार आने लगी। वनराजि सजने लगी नवेली दुल्हन की भाँति। सेवती की लरजती लता फूलों की सुकुमारता से बोझिल, रूप से धवल और सुरभि से मधुमय हो गयी है। बेला की वल्लरियों में अंकुरित कलियाँ मोती की सफेदी को लजाती हैं। इनकी महक की मधुरिमा चटकने की प्रतीक्षा में कसमसा रही है। आम्र-मंजरियों की मादक गन्ध पूरे परिवेश में भर उठी है और रसीला रूप तुम्हारे सौन्दर्य की सीमा ही है। महुए के फूलों की मधु-मदिर गमक से हवा नशीली हो गयी है और गोरा रूप धरती का शृंगार ही है पर रूप की मासूमियत तुम्हें भी मासूम करके ही छोड़ेगी। पञ्च गन्ध और पञ्च सौन्दर्य पञ्च शर को उत्साहित करते हैं। तुम्हारा आगमन कितना सुखद, कितना मनोरम और कितना मासूम।

२२-३-८१

⊙

प्रिय ! वसन्त

॥ वयासी ॥

प्रिय !

वसन्त का मौसम और मधुमास का आलम। ऋतुराज के समूचे परिवेश में मनोज का तूर्यनाद ध्वनित हो रहा है। परस्पर चाहने की लालसा जीवन की सबसे उत्तुंग लालसा है और वसन्त उसका उद्दीपन है। मधुमास ऋतुराज की तरुणाई का महीना है। यौवन की चढ़ती बाढ़ के ये कुछ दिवस ही तो मधुमास के अंग हैं। कचनार-पुष्पों की धवलिमा सुकवि के सुयश-सदृश उपवन की शोभा को द्विगुणित कर रही है। उधर बेला-सुमनों की महकती सफेदी उपवन से बाहर की दुनिया को आकर्षित कर रही है और नीम के फूलों की गन्ध का कसैला स्वाद यौवन के स्वाद सदृश प्रतीत होता है। महुआ के फूलों से टपकता मादक रस, आम के फूलों से झरता मधुरस, सुन्दर सुमनों का मधुनीर—सब मिलकर मधुमास के नाम को सार्थकता प्रदान करते हैं। फिर वसन्त का मौसम क्या आना शेष है ?

२६-३-८१

⊙

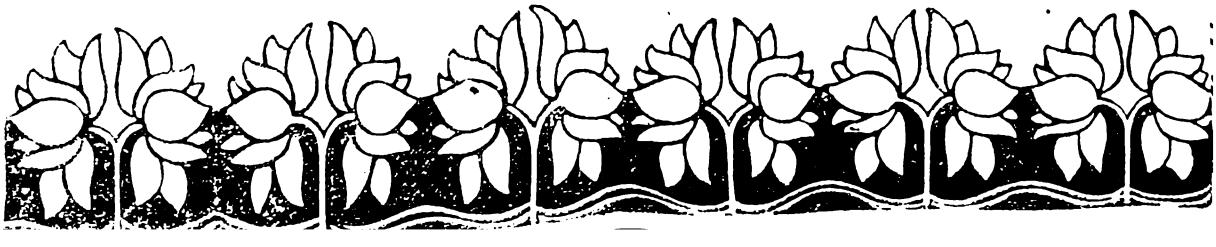

प्रिय ! मधुमास

॥ तिरासी ॥

प्रिय !

मधुमास की यह रात—कितनी काली-अँधियारी और कितनी उदास, मानो वियोगिनी की बड़ी-बड़ी सूनी आँखें हों। कभी-कभी जैसे हृदय का रस आँखों की राह ढुलक कर भीतरी व्यथा को प्रकट कर देता है वैसे ही शबनम की बूँदें वियोगिनी निशा की आँखों से ढलकर प्रियतम निशेश की व्यथा को भरपूर स्पष्ट करती हैं। पर ये छोटे-बड़े नक्षत्र गगन-मन्दाकिनी में खुशी-खुशी डुबकियाँ लगा रहे हैं। स्वर्ग-सरि के तट पर इनकी अपार भीड़ देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो अमा-पर्व पर स्नानार्थियों का बहुत बड़ा मेला जुड़ा हो। वियोग-मिलन, विषाद-हर्ष के पल जीवन के प्रांगण में सदैव आँखमिचौनी खेलते रहते हैं। देखो न, प्रियतम ! उस लोक में ऐसा ही है। वियोगिनी निशा अपने नाथ के लिए आँसू ढार रही है और वहीं आकाशगंगा के पुलिन पर नक्षत्रों का मेला लगा हुआ है। जहाँ वे खुशियाँ मना रहे हैं वहीं निशा के आँसू हैं। सुख-दुःख की यही आँख-मिचौनी इस जीवन का कौतूहल है।

३१-३-८१

⊙

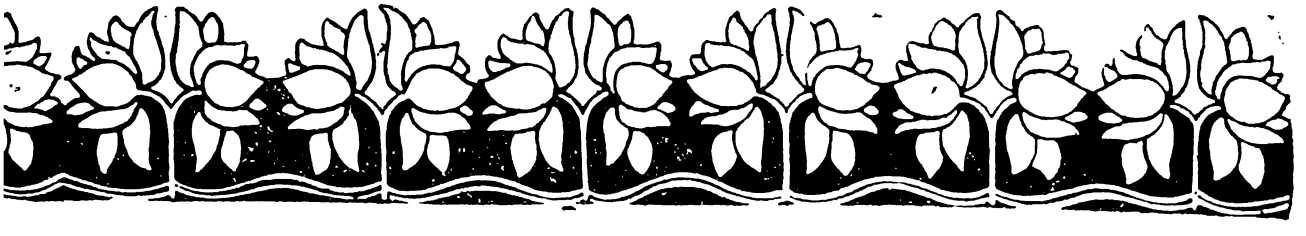

प्रियवर ! वियोग

।। चौरासी ।।

प्रियवर !

वियोग के ये पल कितने बेसाज लगते हैं, मानो पतझड़ के सूखे पत्ते वृन्तच्युत होकर धरती पर यत्र-तत्र निराशा-से बिखरे हैं। कोमल साधें चिन्ताओं से वैसे ही झुलस गयी हैं जैसे ग्रीष्म की तेज तपन से नाजुक बिरवे। काया तो वियोग की वेदना को वैसे ही सह रही है जैसे जेठ में ठूँठ सूरज की प्रखर किरणों को झेलता है। वेदना के नीर बरबस बाहर आना चाहते हैं, पर संकोच की उष्णता उन्हें भीतर ही सुखा देती है। मनोभावों का गाँव वियोगाग्नि से जल रहा है, उससे निराशा का धुआँ और पीड़ा की ज्वालाएँ निकल रही हैं। आह ! मिलने के मधुमय पल आते·····वसन्त की सुकुमार मादकता मानो डालों में अंकुरित हर पत्ते पर छा जाती, आशा का नव रूप दृष्टिगत होता। साधें निश्चिन्त भाव से झूमतीं जैसे सावनी फुहार में नव-पादप और आनन संयोग के उल्लास में वैसे ही खिल जाता जैसे शारदीय कमल-पुष्प को सविता की रश्मियाँ चूमकर खिलाती हैं और लाज की लाली गालों पर फैलकर प्यार के पानी में नहा उठती।

५-४-८१

⊙

प्यारे! विछोह

॥ पचासी ॥

प्यारे !

विछोह की ये घड़ियाँ, ये पल उदासी के बोझ से बोझिल लग रहे हैं। उदासी का यह मार वियोग की थाती है जिसे जीवन अनचाहे ढो रहा है। आखिर यह बोझिलता कब तक ? बेचैनी के आलम में तड़पन की नगरी और बेताबियों का गाँव दुःख के धुएँ से भर उठा है। धुएं की कड़ुवाहट से जीवन का रस आँखों की राह रिस रहा है। निःशेष होता जीवन-रस और धुएँ की सूखी कड़वाहट की विलक्षणता की संगम-स्थली ये आँखें ·····कितनी विवश, कितनी दीन और कितनी बेपनाह !

प्रियतम ! तुम्हीं इन आँखों की शरण हो। इनकी दीनता और विवशता तुम्हारा दीदार होते ही लजाकर परा जायेंगी। तुम्हारे स्नेह के मेघ जब मेरी तड़पन और बेताबियों की धरती को भिगोकर सराबोर कर देंगे, मेरे दुःख का धुआँ शान्त हो जायेगा। एक अनिर्वचनीय सुख की हवा बेचैनी को तुम्हारी प्रीति की हिलोर में बहाकर अस्तित्वहीन कर देगी। जब तुम्हारी चितवन की प्रीति शम्पा-सी अनुराग के मेघ के उन्मुक्त हृदय-कपाट से एकाएक झाँकेगी, जीवन की घड़ियों पर से उदासी का बोझ उतर जायेगा और तब जीवन का हर पल तुम्हारे संयोग से अनुप्राणित हो सुख के बोझ को लेकर गतिशील होगा, जो संयोग की थाती है।

१२-४-८१

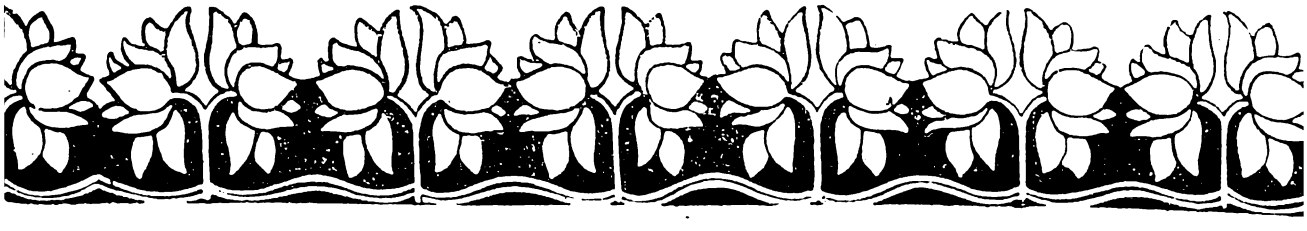

प्रियतम! तुम्हारे

॥ छियासी ॥

प्रियतम !

तुम्हारे आनन-मयंक से फूटती प्यार की किरणों एवं शुक्र नक्षत्र सदृश नयन-तारों के शीतल आलोक से मेरे मानस-सरोवर के कुमुद-सुमनों-सा मेरा संचित निसोक अनुराग खिल उठा। कृष्णवर्णी मेघों सदृश असित एवं कुंचित केश-राशि जब तुम्हारे चन्द्रानन पर बिखर जाती है तो प्रतीत होता है जैसे यमुना ने अपनी श्याम तरंगों के बाहुपाश में गंगा की गोरी जल-धारा को बाँध लिया है। पावन स्नेह की एक झलक पाकर मेरा स्नेह का पथिक-मन इस संगम में नहाने लगा।

अलकों के वारिद जैसे ही हटे विधु वदन के रसीले सौन्दर्य से शबनम की बूंदों सदृश मुस्कान बरसने लगी। अलकापुरी के पीयूष-सी तुम्हारी इस मुस्कान की शबनम में मैं पूरी रात नहाता रहा। तुम्हारे अनुराग की भीनी-भीनी प्यारी महक से मेरा मन भर उठा मानो पूजा की पावनता में समज्जित चन्दन तुम्हारे ललाट की शोभा बनकर सब की ओर गमकने लगा हो।

१७-४-८१

प्यारे ! लापरवाही

॥ सत्तासी ॥

प्यारे !

लापरवाही का तुम्हारा यह खूबसूरत अन्दाज मुझे बड़ा प्यारा लगा। फूलों की धूलि जैसी चेहरे की लुनाई इस हसीन अदा से और निखर उठी। आनन-सरसिज की रज में लोटकर सुखी होने के लिए मन-मधुप सर्वांग उत्सुक है। कमल-कोष के मधय मधुपान में लीन, सुध-बुध खोये अलिनी के मानिन्द बड़री आँखों एवं मस्ती के मकरन्द भी भींगी पाँखों सरिस चंचल बरौनियों से फूटती अभिराम आभा में बिहँसती लापरवाही को अपलक निहारते जी अघाता नहीं।

तुम्हारी लापरवाही का यह अन्दाज मुझे उस लरजती लता की याद दिलाता है जो हवा के थपेड़ों से संघर्ष कर अपनी मानिनी मुद्रा नहीं छोड़ती और स्नेही पीपल के दामन से स्वयं को अलग कर धरती की गोद में फैलकर निश्चिन्त सो जाती है। प्रिय ! इस अन्दाज में मधु का स्वाद है जो मिठास और कसैलेपन का संगम है। यही अन्दाज रूप का दिठौना है।

७-१-८२

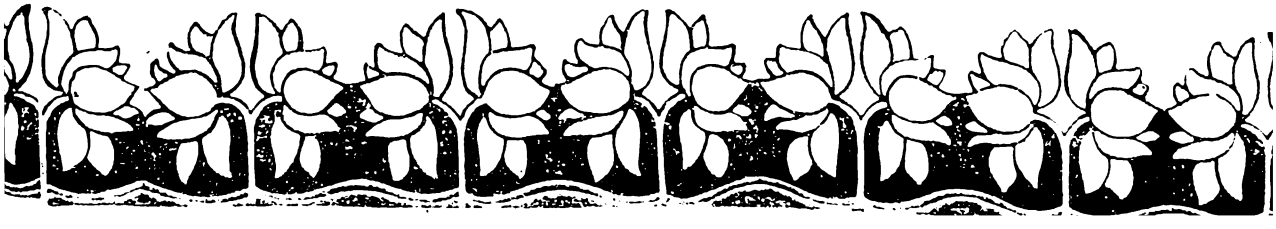

प्रिय ! यह सूनी

॥ अट्ठासी ॥

प्रिय !

यह सूनी हेमन्ती निशा--झिल्लियों की पुकार में डूबी, सन्नन्न् की ध्वनि करती और उसी में बल खाती तुम्हारी याद····· ··विछुड़न की यह वेला कितनी भयावनी, इसी रात के सदृश विषादमयी। स्मृति-चित्राधार के पन्ने पाँखी परेवा की पाँखों सदृश फड़-फड़ा रहे हैं। कल्पना और कामना के अनेक बहुरंगी चित्र इस चित्राधार के शृंगार हैं, पर उसकी एक सादी तस्वीर मेरे हृदय को आज भी उद्वेलित करती है। भोली मुस्कान की सरल-अमिट रेखाएँ वाँकी यादों को बहुत पीछे छोड़ मानस को देर तक चिन्ताकुल रखती हैं। आज की रात वही पृष्ठ मेरी नींद चुराये हुए है।

८-१-८२

⊙

प्रिय ! तुम्हारी

॥ नवासी ॥

प्रिय !

तुम्हारी भंगिमाएँ तो सभी प्यारी हैं, पर स्मिति की भंगिमा का कोई सानी नहीं। तुम्हारी मासूम भृकुटियों और नीली निगाहों में विलसता मधुस्मित संगीत के सुर सदृश मोहक और मनोरम है। चेहरे की लालिमा से झरते मधुहास में शतदल का भ्रम स्वाभाविक है! लजीली आँखों में मुस्कान इन्द्रधनुष-सी बहुरंगी—कभी सफेद, कभी साँवरी, कभी रतनारी और कभी सबकी मिली-जुली झलक देखते ही बनती है। चितवन की मुस्कान से झरती निरीहता उस भोले कपोत की स्मृति जगा देती है जो पकड़े जाने पर पकड़ने वाले के आनन की ओर मासूम नज़रों से देखकर उसकी सम्पूर्ण सहानुभूति एक बार में ही बटोर लेता है। ऐसी है तुम्हारी मीठी, खूबसूरत और रंगीन मुस्कान।

१४-१-८२

⊙

१२

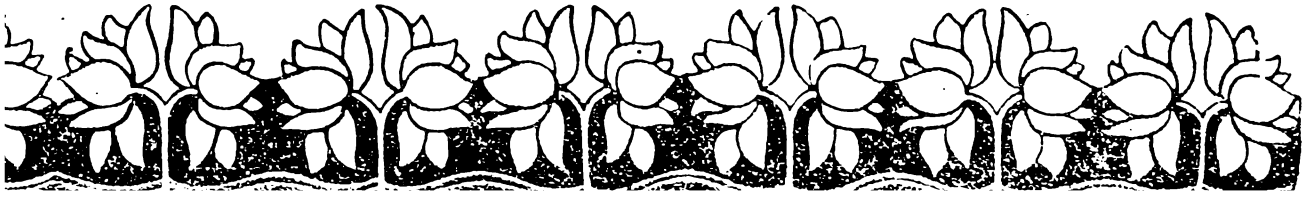

प्रियवर! तनहाई के

॥ नव्वे ॥

प्रियवर !

तनहाई के ये पल कितने चंचल और कितने बेसाज हैं। देखो, यह हसीन चाँद किसी नायिका के मुखड़े का उचित उपमान इन पलों को कदाचित् सह्य नहीं। सरिता की जलधारा को बेधती ये श्वेतवर्णी किरणें सफेद काँटों-सी हृदय में चुभन उत्पन्न कर रही हैं। सोते कमलों की शर-शय्या सदृश इनका तीखापन हृदय में एक टीस उत्पन्न कर रहा है। जलाशय की सेज पर कुमुद-कौमुदी को परिरम्भ-पाश में आबद्ध देखकर मन का कुमुद सिसक उठा क्योंकि कौमुदी-सी तुम्हारी सुकुमार उँगलियों की स्मृतियाँ घिर आयीं। रोते चाँद को अपने मेल में पाकर हृदय सिसक कर रो पड़ा। तुम्हारी कमी से अकेलापन और क्रूर एवं भयावह हो गया।

१०-२-८२

⊙

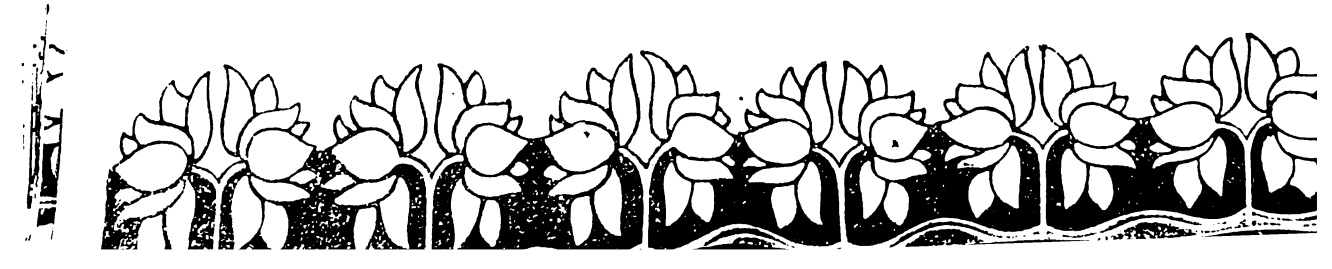

प्यारे ! वियोग

।। इक्यानवे ।।

प्यारे !

वियोग के इन सूने पलों में संयोग वेला की अनेक यादें जाने क्यों जाग उठी हैं। विस्मय न सही पर प्रश्न तो अवश्य उभरता है क्योंकि वियोग-काल का हर पल उदासी, उद्विग्नता, उत्कण्ठा और उत्सर्ग का होता है। बिछुड़न का दुसह दुःख उदासी को जन्म देता है। मिलन की अविराम प्रतीक्षा की निस्सीमता उद्विग्नता की जननी है। मिलने की हुलसती जिज्ञासा उत्कण्ठा है और तुम्हें पाने की आकुलता में सर्वस्व समर्पण की भावना उत्सर्ग की विधात्री है।

पर इन सभी को हटाकर आज संयोग वेला के अनेक रंग-बिरंगे चित्र तुम्हारी हसीन अदाओं की मासूमियत, तेवरों की शोखी, रोष की सादगी और मुस्कान की कटीली मुद्राएँ——कभी अलग-अलग तो कभी एक साथ मन के वीराने में ध्वनि-चित्र सदृश छा जाती हैं। कल्पनाओं के स्वप्निल लोक में भरमता वियोगी मन एकाएक जैसे चौंक कर विस्मय के गर्त में पड़ा महसूस करने लगता है, पछताता है, और तब वियोग के उन पलों में सपनों की इस निराली दुनिया के लिए भी मन तड़प उठता है।

१-६-८२

⊙

प्रिय ! तुम्हारी

॥ बानबे ॥

प्रिय !

तुम्हारी उदासीनता के इस झटके के लिए मैं बिल्कुल अप्रस्तुत था। पर अचानक सर्द हवा की एक दुर्बल रेखा सदृश तुम्हारी यह कुछ पलों की उदासीनता मेरे हृदय को सिहरन से भर गयी। खिन्नता मेरी पलकों को बोझिल करने लगी। मेरे उदास नयन बड़ी निरीहता से एक बार उठे·····ओह ! ताल-सी लहराती तुम्हारी आँखों में मेरे नयनों की उदास निरीहता भींग उठी। प्रियतम ! मुझे क्या पता था कि उदासीनता की यह शुष्कता अपनी छाती में स्नेह की इतनी तरलता छिपाये हुए है। सच्चे प्यार को इस झटके से उम्र मिली, सिहरन से संवेदनाएँ जगीं और खिन्नता से अलभ्य मिल गया, मेरे सर्वस्व ! सब कुछ।

९-६-८२

⊙

प्यारे ! तुम्हारी

॥ तिरानवे ॥

प्यारे !

तुम्हारी उदासीनता की सलवटों में मुस्कान की आभा बादलों से आँखमिचौनी करती चाँदनी-सी बड़ी मोहक लगी। बादल और चाँदनी का परस्पर आलिङ्गन बड़ा सुन्दर लगता है, पर बादल से चाँदनी का दर्शन ही सुखकारी होता है। उदासीनता में मुस्कान का फीकापन दर्द देता है। ओह, प्यारे ! तुम्हारी मुस्कान की बेबसी·····मैं मजबूर हूँ—मुस्कान की मोहकता आसक्ति बढ़ाती है, पर उदासीनता की सलवटों में फफक उठने को जी चाहता है। निराला संगम है मुस्कान और उदासीनता का जो तुम्हारे आनन में ही नहीं मेरे हृदय में भी है।

१०-६-८२

⊙

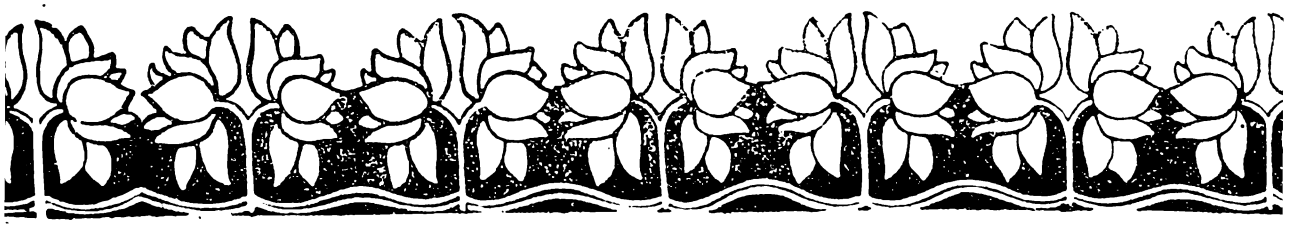

प्रियवर! मालती

॥ चौरानवे ॥

प्रियवर !

मालती फूलों की गमक ने बरबस तुम्हारी याद दिला दी। महक के झोंके रह-रहकर आते रहे और उसके साथ ही तुम्हारी स्नेहिल स्मृतियाँ भी। स्मृतियों का चित्राधार सामने है और मालती महक रही है। हठात् आँखें उठीं। सब प्यारे! मालती के सफेद फूलों के अनेक गुच्छे अपनी भीनी सुरभि से मन का अतृप्त कोष भरने के लिए प्रयासरत हैं जैसे वैसे ही तुम्हारे निर्मल प्यार की अनेक यादें एक-एक कर मन को अपनी सुगन्ध से भर रही हैं।

निहारता हूँ इस श्वेत वर्ण मालती सुमन को पल भर के लिए·····पर यह क्या ? तुम्हारा रूप मेरे मन की दुनिया में साकार होने लगा। मुझे लगता है कि तुम्हारी मुस्कान से इसने महक उधार ली है और झुकी नजरों से मासूमियत, कपोलों से कोमलता तथा खूबसूरती तुम्हारे रूप-सौन्दर्य से। प्यारे! मैं अपनी सम्पूर्ण भावना से तुम्हारी हर अदा को प्यार करता हूँ। इस मालती की गमक तुम्हारे स्नेह की गमक को सदैव बिखेरे।

३०-६-८२

⊙

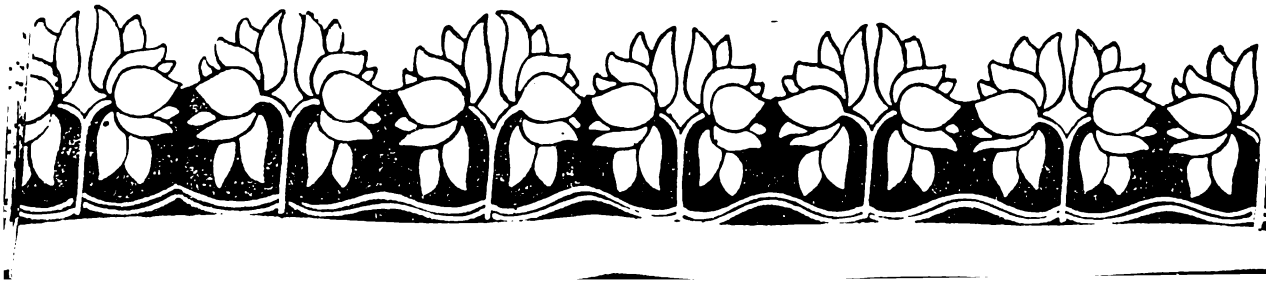

प्रिय ! मेरे

॥ पंचानवे ॥

प्रिय मेरे !

सावन के मदमाते मेघों सदृश तुम्हारा उनींदा रूप·····अदाओं की वह शोखी विद्युत् माला-सी और सावनी बयार सदृश तुम्हारी अल्हड़ता सब मेरी स्मृति को कुरेदकर जगा रहे हैं। प्यारे ! गये दिन लौटते नहीं, पर यादों का डेरा हृदय की धरती पर ही रहता है। आज अपने डेरे में यादें उद्वेलित हो उठी हैं। वे खूबसूरत दिन, रातें—सभी दूर बहुत दूर—पीछे छूट गये हैं। तुम भी दूर जा पड़े हो, पर हृदयवासिनी इन यादों ने बेचैन कर रखा है। क्या करूँ ? उन दिनों की दाख-सी मधुर स्मृति·····वे भावमयी शोख अदाएँ, जिन्दगी-सा प्यारा तुम्हारा रूप, खेलते शिशु-सी चंचल लापरवाही—बरबस एक पल के लिए उत्फुल्ल कर देती हैं पर तुम्हारा वियोग तभी सालने लगता है। हर्ष और विषाद का यह संगम निराला है।

२०-८-८२

⊙

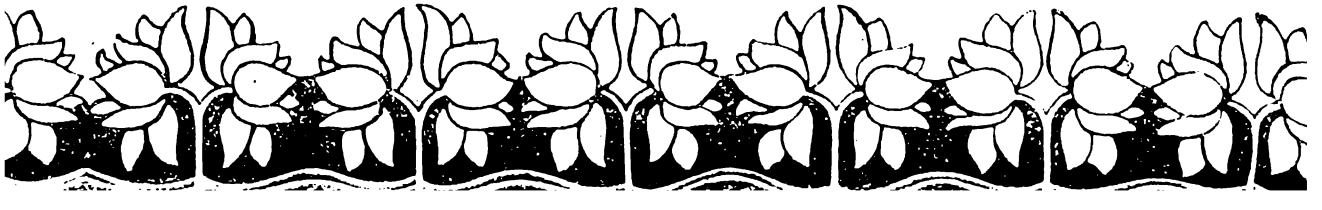

प्रियतम ! जीवन

॥ छानवे ॥

प्रियतम !

जीवन की तरी दुनिया की नदी में धीमी गति से तिर रही थी। हम दोनों ही तो स्नेह के पतवार से उसे गति दे रहे थे। अनुराग के रंग में भली-भाँति सराबोर कर सुनहली साँझ सरक गयी थी। प्यार के पलों की साखी भरने का इन्तजार वह न कर सकी। पूनम का प्यारा अपने रजत-करों से पीयूष की रस-बूंदों की वर्षा करने में आते ही लीन हो गया। प्रीति के इन पलों को अपनी श्वेताभा के यशोत्तरीय से आच्छादित कर यह पीयूषवर्षी अमरता प्रदान करने में लगा था।·····पर यह क्या ? नौका डगमगाने लगी। नदी तूफान की बाँहों में उद्विग्न थी और पतवार नैया की प्यारी जिन्दगी के लिए तूफान की विकरालता से वैसे ही जूझ रहा था जैसे दीपक झंझावात के आवर्त्तों में जीवन के लिए संघर्ष करता है। प्यारे ! यह पतवार ही हमारा सम्बल है, इसे हम दोनों दृढ़ता से पकड़कर नैया को तूफान से बचायें। फिर देखना·····चाँद अमृत-घट के साथ पुनः आयेगा और हम लोग उसमें स्नात होकर अमर प्रीति में बँध जायेंगे सदा के लिए। तूफान की मौत होगी। नदी स्वच्छन्द धीमी गति से प्रवाहित होगी और स्नेह-पतवार के सहारे जीवन-नैया तिरेगी।

२-९-८२

⊙

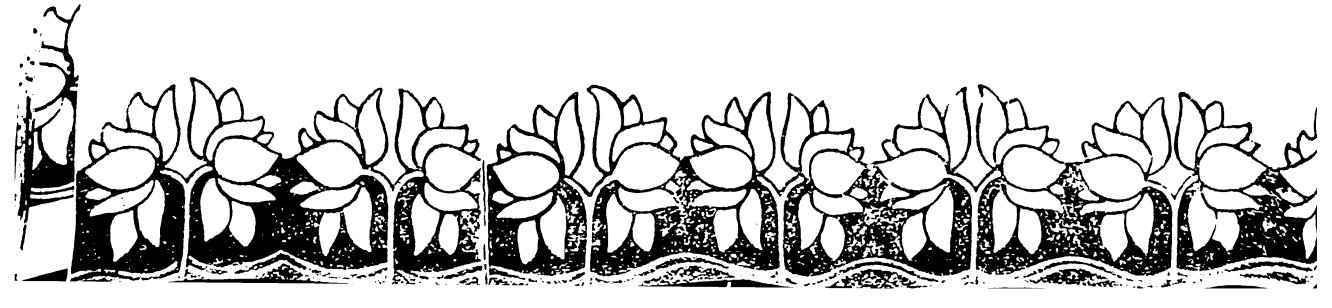

प्रियतम ! वियोग

।। सत्तानवे ।।

प्रियतम !

वियोग के पलों की समीपता का एहसास होने लगा है। संयोग के इन पलों की मिठास धीरे-धीरे चुकने लगी है। तुम्हारी समीपता दूरी में बदलेगी.....यह कल्पना ही काली रात-सी भयावनी लगने लगी है। विरागी वाल्मीकि की करुणा का कमण्डल वियोगी पक्षी की तड़पन से छलक पड़ा था। तभी सुकुमार अवयवों वाली कविता जन्मी थी। पर उसकी कोमलता का निर्माण विरागी के आँसुओं ने किया था।

प्यारे ! आदिकवि देर तक रोया होगा। उसके नयनों की करुणा की धार आज भी वियोगी जनों का हृदय धोती है। मेरे अपने ! आज विछोह की कल्पना से विरागी कवि की वह करुणा धीरे-धीरे मेरे हृदय में रिसने लगी है। कमल-पत्रों पर झलकते जल-विन्दुओं से मेरे नयन-कोर नम हो चले हैं। तुम्हारे आनन-सरोज की अरुणिमा मेरी आँखों में ढलकर आ रही है पर आते ही उसका रंग सफेद हो जाता है। वियोग का रंग.....? प्रिय, उसकी कल्पना से मन का अनुराग अधीर हो उठा है। उसे सहारा दो प्रिय। विछोह निसर्ग की हृदय को अनुपम देन है। फिर अनुराग पर वह क्यों न बरसे ? विछोह अनुराग की कसौटी है। पर उसे आने से कौन रोके ? विछोह होगा, करुणा नयनों की राह बरस-कर हृदयवासी अनुराग को भिगोयेगी। इसीलिए विरह सत्य है।

१५-९-८२

⊙

प्रियवर ! आज

॥ अट्ठानवे ॥

प्रियवर !

आज तन्हाई का साथ है और तुम मुझसे दूर हो, यह सच है। इस सच की कल्पना से कभी तन-मन सिहर उठता था। पर आज यह सच जीवन से जुड़कर वैसे ही अभिन्न हो गया है जैसे इतनी दूरी के बाद भी तुम भिन्न नहीं। कल्पना के डैनों के सहारे मैं तुम्हारे समीप पहुँचना चाहता हूँ। तनहाई से दूर होना चाहता हूँ। पर क्या करूँ ? प्यारे ! तनहाई समर्पित भाव से साथ लगी हुई है। इसके समर्पण पर भी करुणा आती है और साथ में तुम्हारी बड़ी याद भी आती है। यह तुम्हारे लिए बड़ा ही तड़पाती है। यह तनहाई का समपर्ण-भाव ही है कि मैं तुम्हारे लिए इतना बेचैन हूँ। इसकी अनन्यता ही हम दोनों की दूरी का दर्द मिटायेगी, हम लोगों की अनुराग-डोर को और सुदृढ़ करेगी। अतः प्यारे, तुम्हें पाने के लिए इसकी उपासना अपेक्षित है।

१७-९-८२

⊙

प्रिय ! लगाव

॥ निन्यानबे ॥

प्रिय !

लगाव और विलगाव जिन्दगी के दो प्रत्यक्ष सत्य हैं। सुख और दुःख की अनुभूतियों का जन्म इन्हीं से होता है सम्पूर्ण सृष्टि के परिवेश को इन्हीं दोनों ने आच्छादित कर रखा है। देखो, कुमुदिनी चाँद से सारी रात प्यार करती है और सुबह होती है अलगाव के पलों के साथ। वह उदास हो जाती है। सूरज की किरणों के विलग होते ही कमल सम्पुटित हो जाता है, उसका सम्पूर्ण सौन्दर्य मिलन के पलों तक का ही होता है। चकोर सारी रात कौमुदी से चुम्बन के आदान-प्रदान में रत रहता है और अलगाव होते ही अंगारे से चोंच जला लेता है। कोक-कोकी अलगाव की वेला में रात भर तड़पते हैं। निशा-वियोगी इस युग्म की करुण पुकार हृदय को करुणा से विगलित कर देती है, पर अरुण-रश्मियों और सर-उर्मियों के प्रेम-व्यापार के साथ ही इन दोनों की प्रेम-क्रीड़ा प्रारम्भ हो जाती है। कहीं लगाव और कहीं विलगाव ..... प्यारे ! दुनिया में सर्वत्र यही रीति है।

आज तुम मुझसे दूर हो, तो कभी तनहाई पास बुलाती है, कभी व्यंग्य करती-सी प्रतीत होती है। प्रिय, बीत जाने दो अलगाव के इन पलों को। हमारी प्रतीक्षा, लगाव की, मिलन की, सुन्दर घड़ियों और नायाब पलों तथा खूबसूरत दिनों की है। तुम भी प्रतीक्षा करो। प्रतीक्षा सत्य है।

२०-९-८२

⊙

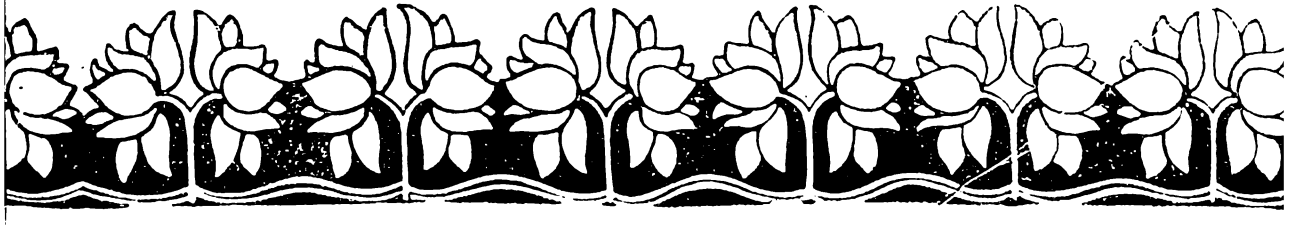

प्रिय ! स्मृतियों

॥ सौ ॥

प्रिय !

स्मृतियों में डूबने का यह पल कितना मधुर है········याद का एक झोंका मन उमगाने लगा है। आह ! वे पल ! नहीं पलों का वृत्त ! कितना स्नेहसिक्त था जब तुमने अपनी अनुराग-मंजूषा को उन्मुक्त कर अपने अंक-पाश में आबद्ध कर लिया था। उत्तप्त साँसों का मिलन, स्पर्श-सुख की शीतलता से विरह-दाह मिट गया था। तब प्यार के पलों का वृत्त जैसे छोटा पड़ गया था। मेरे प्यार की सीमा ! सचमुच तुम असीम हो।

खूबसूरत चाँद सदृश मुखड़े से झरती कौमुदी-सी मुस्कान अनेक बार मुझे नहला चुकी है। रूठने की अदा तो आज भी मुझे कुछ पल के लिए मान की उस प्यारी दुनिया में पहुँचा देती है और मैं अपना अस्तित्व तुम्हीं में समाहित अनुभव करता हूँ। स्मृतियों के सहारे तुम्हारे असीम अनुराग में नित नहाऊँ, यही कामना है।

२१-६-८२

⊙

Acc. No. 97780
Date 11/7/2000

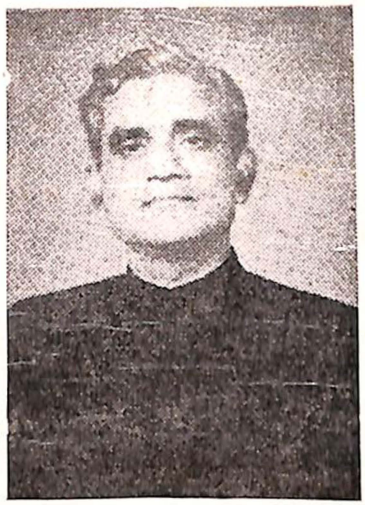

डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय

जन्मतिथि — कार्तिक शुक्ल सप्तमी, संवत् १९८५ वि०
जन्मस्थान — प्रयाग
वर्तमान पता— 'वेलकम', कुशीनगर (उ० प्र०)

कृतियाँ :

गद्यकाव्य : मधुगीत (१९६४), छितवन के फूल (१९७४), मधुनीर (१९८५), स्वर्णनीरा (सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित), मधुमास का गायक (शीघ्र प्रकाश्य)

शोधग्रन्थ : १—स्वामीरामचरण : जीवनी एवं कृतियों का अध्ययन
२—त्रासदी और हिन्दी नाटक
३—शाहपुरा की रामसनेही संतकाव्य परंपरा (शीघ्र प्रकाश्य)

कहानी संग्रह : एक रात : एक अकेला

नाटक : दुर्गादास की आँखें

गद्यगीत संग्रह : स्मृतियों का झरोखा (अप्रकाशित)

डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय सर्वथा अज्ञात और अल्पज्ञात हस्तलिखित ग्रन्थों के अध्ययन-अनुशीलन के प्रति समर्पित हैं। आपके शोधग्रन्थ आपके अन्वेषी व्यक्तित्व का प्रमाण हैं। आपकी शोध-साधना एवं साहित्य-साधना की फलश्रुति के रूप में 'चिन्तन' शोध-वार्षिकी का प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है जिसकी विद्वानों में प्रतिष्ठा है।

गद्यकाव्य विधा में अन्योन्य रससिक्त गद्यकाव्यों का सजन कर आपने एक समर्थ रचनाकार के रूप में हिन्दी साहित्य की अमू
कहानी और नाटक की विधा में भी आप की लेख
है। आप द्वारा सृजित नाटक इसके ज्वलन्त प्रमाण
सम्प्रति आप बुद्धस्नातकोत्तर महाविद्यालय कुशी
पद से निवृत्त होकर नागरीप्रचारिणी सभा, देवरिया के अ
करते हुए साहित्य सृजन में अहर्निश साधनारत हैं।

Library IIAS, Shimla
H 818 P 192 M
00097780